राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर
के
प्रथम अध्यक्ष एवं उन्नायक
स्वर्गीय श्री गोवर्धनलाल जी काबरा
की
पावन स्मृति
मे
सादर समर्पित!

अनुक्रम

	पृष्ठ
वक्तव्य	—
कत्थक नृत्य	१
कत्थक में राधा-कृष्ण	४
कत्थक में प्रश्नोत्तर प्रणाली	८
रंगमंच	१२
ृत्य ंच पर प्रवेश तथा निकास	१७
ध्वनि एवं संगीत-योजना	२१
प्रकाश-व्यवस्था	२९
नृत्यमंच और रंगीन प्रकाश	३१
पद-संचालन	३६
वेशभूषा एवं शृंगार-सज्जा	४२
प्रदर्शन-योजना	४७
प्रायोगिक क्रिया	५३

वक्तव्य

मानव ने अपने मनोरंजन हेतु अनेक साधन जुटाए, जिनमें संगीत, नाटक, नृत्य आदि कलाएं प्रमुख हैं। सभ्यता के विकास के साथ इन कलाओं का भी विकास होता गया। इनके प्रदर्शन हेतु स्थान-स्थान पर मंच बनाये गए और उनके माध्यम से नाट्य एवं नृत्य को समाज के जीवन का एक आवश्यक अंग मानकर विविध रूपों में कला को अपनाया गया।

वर्तमान युग में संगीत, नाटक, नृत्य को प्रोत्साहन देने के लिए विभिन्न प्रकार के संगठन बने हैं। इन संगठनों को सरकार द्वारा आर्थिक सहयोग भी दिया जा रहा है। शिक्षण-संस्थाओं में भी संगीत-नृत्य की शिक्षा एवं परीक्षा की व्यवस्था है। यह सब होते हुए भी हमारे कला-विदों के सोचने का तरीका वही है जो स्वतन्त्रता से पूर्व था। सरकार द्वारा प्रति वर्ष लाखों रुपए खर्च किये जाने पर भी कला के शिक्षण में ऐसी कोई मोड़ नहीं आ पाई है, जिससे कि वह समाज के प्रत्येक अंग को आनन्द प्रदान कर सके। पृथक्-पृथक् कला संगठनों के कलाकार एवं कला-क्षेत्र निश्चित हैं, जिनके द्वारा कला-साधक और संगठनों के संचालक जीवित हैं।

कत्थक-नृत्य उत्तर भारत का शास्त्रीय नृत्य माना जाता है किन्तु इसका शास्त्र कहां है और कौन सा ग्रन्थ इसकी प्रणाली का प्रतिनिधित्व करता है आदि प्रश्न विचारनीय है। घरानेवाद की यह कला अद्यावधि मौखिक-शास्त्र के रूप में ही चली आ रही है। फिर भी जो कुछ है, उसीका अध्ययन करके हमें इस कला को शनैः शनैः शास्त्र-बद्ध कर लेना चाहिए।

भारत के समस्त संगीत-संस्थानों ने अपने पाठ्यक्रम में कत्थक विषय की परीक्षा को स्थान देकर इसका क्षेत्र वढ़ाया है किन्तु पाठ्यक्रम को देखने पर उसमें सिर्फ जटिल तालों में तोड़े, परने, आमद, प्रिमलू के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता। ध्यान रखना चाहिए कि यह कला रंगमंच से सम्बन्धित है।

अब तक इस कला के आचार्यों का मंच राजाओं के महलों अथवा रईसों की महफिलों तक ही सीमित रहा है। किन्तु वर्तमान युग में इस कला का प्रदर्शन करने के लिए रंगमंच का साधन बन गया है। अतः प्रदर्शन को सफल बनाने के लिए रंगमंच सम्बन्धी समुचित जानकारी आवश्यक है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु यह पुस्तक लिखी गई है।

आज हमें कत्थक नृत्य को रंगमंच पर लाने का अवसर मिला है। अतः मैं चाहता हूं कि इस पक्ष की जानकारी से आज के साधक को वंचित न रखा जावे। स्थान-स्थान पर रंगमंच वनते जा रहे हैं। यहां तक कि शिक्षण-संस्थाओं में भी इनका उपयोग समझा जाने लगा है। ऐसी स्थिति में नृत्य-साधक को इस विषय का ज्ञान प्राप्त करके अपने विषय को अधिक सुदृढ़ बना लेना लाभदायक है।

कत्थक नृत्य की शिक्षा को घरानेवाद की जटिलता से निकालकर सुगमता में परिवर्तित करना संगीत-संस्थाओं का कर्त्तव्य है। विज्ञान के इस युग में देश की प्रत्येक कला में परिवर्तन आ रहा है, जिसकी देश को नितांत आवश्यकता हैं। परिवतन के इस युग में यदि घरानावाद की, शिक्षण-व्यवस्था में नवीनता आती हैं तो इससे किसी को नाराज न होकर सहयोग ही करना चाहिए।

अन्त में डा० मनोहर शर्मा (सम्पादक वरदा) एवं श्री रामगोपाल शर्मा (उपपंजीयक, शिक्षा विभागीय परीक्षाएं, राजस्थान, बीकानेर) का मैं आभार प्रदर्शित करता हूं, जिनका सहयोग इस पुस्तक को तैयार करने में मुझे वरावर रहा है।

लेखक :—

कत्थक नृत्य

भारतीय नृत्यकला के आचार्य कत्थक शब्द का सम्बन्ध भरतनाट्यशास्त्र से जोड कर इसकी उत्पत्ति वैदिक-काल से मानते हैं परन्तु कत्थक-नृत्य की क्रियाओं तथा प्रदर्शन प्रणाली में राधा-कृष्ण की लीलाओं पर मुगलकालीन प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कत्थक-नृत्य का पूर्ण रूप से प्रचार लखनऊ के अन्तिम नवाब वाजिदअलीशाह के समय मे हुआ। उस समय कत्थक का स्वरूप जिस रूप मे था, वही आज भी हमारे सम्मुख है। परन्तु इससे पूर्व भी इस नृत्य का प्रचलन किसी न किसी रूप में अवश्य रहा होगा क्योंकि किसी भी प्रणाली अथवा कला का प्रचार एकदम से नहीं हो जाता।

कत्थक-नृत्य के सम्बन्ध में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते है कि नवाब वाजिदअलीशाह स्वयं एक अच्छा नृत्यकला-विशेषज्ञ था और उसने इस विषय के शिष्य भी तैयार किये। यह समय भारतीय संस्कृति के विनाश का युग माना गया है। परन्तु समस्त भारत में मुगल-साम्राज्य का प्रभाव होने पर भी सगीत तथा नृत्यकला की साधना में कोई अन्तर नहीं आने पाया।

मुगल-शासक सौन्दर्योपासक थे। अतः सगीत एवं नृत्य-शैली में शृङ्गार-रस को प्रधानता मिली और भारतीय नृत्य तथा संगीत में वासनामय एवं अपवित्र कला का स्वरूप समाज के सामने आया। शासकों की विलास-प्रवृत्ति के कारण देश मे धार्मिक एवं भक्ति की धारा मन्द सी हो गई और भारतीय संगीत-नृत्य जैसी पवित्र कला वासना पूर्ति का साधन बन गई। इससे पूर्व सगीत का प्रचलन लोकरंजन तथा धार्मिक भावनाओं के प्रकाशन हेतु था।

इस युग के भक्त-गायक राधा-कृष्ण के ललित एवं शृङ्गारिक रूप के ही गुण-गान किया करते थे। राधा-कृष्ण की लीलाओं का सम्बन्ध

और समाज के बीच बन चुका था। संगीत, नृत्य का आनन्द भक्ति-भावना तथा लोकरंजन हेतु रासलीला के रूप में समाज के सम्मुख आया। साधारण जनता ने रास के इस रस को आनन्दपूर्वक ग्रहण किया, जो धीरे-धीरे कुत्सित वासना के रूप में प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में समाता गया। शृङ्गार प्रधान संगीत-नृत्य के कलाकारों ने रासलीला के नाम पर सामाजिक क्षेत्र से इसका अनुचित लाभ उठाया और राधा-कृष्ण को कला को अपना कवच बनाया।

समय के परिवर्तन के साथ मुगलकाल की कला को अधिक नीचे उतारने के लिए उन्हें किसी विशेष शैली को अपनाने की आवश्यकता नहीं हुई। कलाकारों ने राधा-कृष्ण के प्रचलित संगीत-नृत्य के रसात्मक पक्ष को कत्थक तथा नटवरी नृत्य के नाम से प्रसारित कर शासकों एवं समाज दोनों से आदर प्राप्त किया। शनैः शनैः ये नाम लोक-जीवन में इतने अधिक व्यापक बन गये कि इन्हें भारतीय शिष्ट-नृत्य की श्रेणी में स्थान प्राप्त हो गया।

इन कलाकारों ने अपने आश्रयदाताओं को शीघ्र ही प्रसन्न कर पुरस्कार प्राप्त करने की भावना को ध्यान में रख कर ऐसे ही नृत्य प्रस्तुत किये, जो उनकी वासनाओं की तृप्ति के साधन होते थे। कलाकारों की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि वे अपना जीवन-निर्वाह अन्य साधनों द्वारा कर सकें,- अतः चमत्कारपूर्ण नृत्य प्रस्तुत करके वे तुरन्त पुरस्कार प्राप्त करने में सफल होना ही ठीक समझते थे।

नृत्यकारों ने राधा-कृष्ण के जीवन की उन लीलाओं को चुना जिसमें, शृङ्गारिक भावों के साथ छेड़-छाड़ आदि क्रियाओं को विशेष रूप से प्रदर्शित किया जा सके। शृङ्गार-प्रधान यह नृत्य तत्काल हों समाज में व्याप्त हो गया क्योंकि भक्तिकालीन रासलीला की भावना मूल रूप से छाई हुई रहने के कारण मुगलकालीन परिस्थिति में उन्हें पूर्ण सहायक सिद्ध हुई।

इस युग में दो प्रकार के कलाकार सामने आए—राजाश्रय के कलाकार तथा लोकाश्रय के कलाकार। दोनों हो कलाकार अपनो साधना के पक्के थे और उन्होंने कला-प्रदर्शन के दोनों पक्षों को ही विशेष रूप से साधना में स्थान

दिया। कला का एक रूप शृङ्गार-प्रधान तथा दूसरा रूप वीरता-प्रधान या चमत्कार-प्रधान था। कुछ कला-साधकों ने भक्ति-प्रधान संगीत, नृत्य को भी अपनाया किन्तु उसका स्वरूप विशेष सामने नहीं आ सका।

कथकों ने राधा के सोलह शृङ्गारों का प्रदर्शन संयोग-वियोग भावों के साथ प्रस्तुत किया तथा कृष्ण द्वारा राधा को परेशान करने के भावों को प्रधानता दी। इधर वीर-रस के साधकों ने चमत्कारपूर्ण नृत्यों को प्रस्तुत किया जैसे—तलवारों, भालों एवं कांच के टुकड़ों पर नाचना आदि।

हम देखते हैं कि स्वतन्त्रता के इस युग में भी इस शास्त्रीय-नृत्य का स्वरूप वही चला आ रहा है जिसमें चमत्कारपूर्ण तोड़े, परनें आदि रचनाओं की प्रधानता है। घराने की इस कला में शृङ्गारिक चेष्टाओं को व्यक्त करने वाली परिपाटी को आज भी अपनाये रखना कहाँ तक उचित है यह एक विचारणीय विषय है। आज का संगीत-शास्त्री एवं विद्वत्-समाज कथक-नृत्य को उछल-कूद की परिभाषा में इसलिए मानता है कि यह नृत्य आधुनिक युग के अनुकूल नहीं बन पाया है, जबकि देश-काल के साथ इस कला में भी परिवर्तन की नितान्त आवश्यकता है।

卌

कत्थक में राधा–कृष्ण

भारतीय नृत्य-परम्परानुसार कत्थक शैली में राधा–कृष्ण का प्रसंग मुख्य है। प्रत्येक घराना इनकी लीलाओं को अपने नृत्य के प्रारम्भ से अन्त तक तोड़े, टुकड़े, परन, गत-भाव आदि बन्दिशों द्वारा प्रदर्शित करता है। इनके नृत्य में बोलों को प्रधानता दी जाती है, जो किसी प्रसंग को लेकर होते हैं। बोलों की प्रधानता को घुंघरूओं की झंकार से विशेष रूप से सम्बन्धित कर देने के कारण भावों का प्रदर्शन गौण हो जाता है। ठुमरी-नृत्य इस शैली का भाव-प्रधान गीति-नाट्य है, जिसमें पद-संचालन नहीं किया जाता है। इस प्रकार नृत्य का जो वास्तविक कार्य भाव-भंगिमा है, इस प्रणाली में साधारण है।

राधा–कृष्ण से सम्बन्धित निश्चित क्रियाओं के अलावा इस नृत्य में कोई ऐसी बात नहीं है, जिसके कारण यह नृत्य शास्त्रीयता की पुष्टि करता हो। फिर भी इस नृत्य के जिस स्वरूप को हमारे आचार्य शास्त्रीय मानते आये उसके विभिन्न पहलुओं पर विचार कर लेना उचित है।

प्रत्येक घराना नृत्य में पद-संचालन पर अधिकार प्राप्त करके विभिन्न बन्दिशों को मंच पर नाचता है। इन घरानों में जो कार्य राधा-कृष्ण के हैं, सम्बन्ध में प्रस्तुत किए जाते हैं, उनका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है:—

कत्थक में राधा

नृत्य की नायिका राधा है, जो कृष्ण को प्राप्त करने के लिए बेचैन है। राधा के जीवन [illegible] ...ाओं के साथ [illegible] है:—

(१) हावा का परिचय :—

(अ) गगरी के भाव।
(ब) बंसी के भाव।
(स) मुकुट के भाव।
(द) पिचकारी के भाव।
(क) घूंघट के भाव।

(अ) गगरी के भाव :—

बिना गगरी के इस प्रकार भाव प्रदर्शित किये जाते है :—
गगरी को सिर पर रखना, बगल मे रखना, पानी सहित सीधी रखना एव उतारना, खाली गगरी को आड़ी-तिरछी करके लेना, पानी भरना-उडेलना, गगरी लेकर चलना, पनघट पर जाना, यमुना किनारे जाना, एक हाथ से दूसरे हाथ मे गगरी बदलना, रस्सी बाध कर कुए मे डालना व बाहर निकालना आदि भावो का प्रदर्शन इस नृत्य मे किया जाता है।

(ब) बंसी के भाव :—

बंशी के बिना ही भावों को इस प्रकार नृत्य में प्रदर्शित किया जाता है :—

बंशी सुनना, बजाने का प्रयत्न करना, छुपाना, छीनना, हृदय से लगाना, तोड़ने की चेष्टा करना, शिकायत करना, कृष्ण की तरह लेकर चलना, अकड़ना आदि भावों को बंसी सम्बन्धी क्रियाओं के साथ किया जाता है।

(स) मुकुट के भाव :—

बिना मुकुट के मुकुट के भाव सहित प्रवेश, प्रस्थान तथा साधारण गत-भाव के सिवाय अन्य कार्य देखने को नही मिलते है।

(द) पिचकारी के भाव :—

बिना पिचकारी के पिचकारी के भाव सहित प्रवेश तथा होली

खेलने सम्बन्धी अनेक भाव-भंगिमाएँ प्रस्तुत की जाती हैं :— रंग घोलना, रंग मिलाना, रंग डालना. गुलाल लगाना, पिचकारी में रंग भरना, डालना, स्वयं पर डाले हुए रंग को पोंछना, साड़ी या दुपट्टा भीग जाने पर उसे निचोड़ना, कृष्ण को खोजना, छीना-झपटी करना आदि होली खेलने सम्बन्धी भावों को विस्तृत रूप से प्रदर्शित किया जाता है।

(क) घूंघट के भाव :—

इस क्रिया में घूंघट पूरा निकालना, अर्ध घूंघट, बारम्बार घूंघट निकालना व हटाना, ऊपर देखना, पक्ष में देखना, हास्य, करुण आदि भावों सहित देखना, घूंघट निकाले पानी भरने जाना या लेकर आना, राह में कृष्ण से भेंट होने से शर्म करना, काँटा चुभ जाने पर बैठना, काँटा निकालना आदि भावों के साथ घूंघट-नृत्य में भावों का प्रदर्शन किया जाता है।

उपर्युक्त भावों के अतिरिक्त मंच पर राधा के संयोग-वियोग के भावों को प्रस्तुत किया जाता है। संयोग के भाव में राधा उत्साहपूर्वक कृष्ण से मिलने की आशा में शृङ्गार करती है। कत्थकों की भाषा में इन क्रियाओं को राधा के सोलह शृङ्गार कहा जाता है किन्तु रस-सिद्धान्त के अनुसार ये उपयुक्त नहीं हैं। राधा के इन शृङ्गारिक भावों को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है :—

(१) चोटी बनाना (२) मांग भरना (३) बिन्दी लगाना (४) मेंहदी लगाना (५) काजल डालना। इसके अतिरिक्त कान, नाक, गले के आभूषण पहिनना आदि।

उपर्युक्त भावों का प्रदर्शन प्रिय-मिलन की आशा में प्रदर्शित किया जाता है किन्तु निराशा के समय आभूषणों को उतारना तथा सिर की चोटी को खोलने के भाव दिखाने की प्रथा है।

इसी प्रकार जब कत्थक नृत्य में कृष्ण को नायक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो इन्हीं साधारण भाव-भंगिमाओं को दिखाया जाता है, जो जन-साधारण के लिए सामान्य है। आगे कृष्ण-नृत्य पर विचार किया जा रहा है।

कत्थक में कृष्ण

(१) परिचय :–

मुदर्शन चक्रधारी, बंशीवाला, मुकुटधारी, गिरधरधारी, नन्द जी का लाला, बाल कृष्ण, गाये चराने वाला, रास रचाने वाला, श्याम वर्ण, कानों में कुण्डल धारण किये, ग्वालों का साथी आदि।

(अ) बंशी के भाव :–
बंशी बजाना, बंशी घुमाना, राधा से छीनना, खोजना, अकड़ना, बंशी की गत-भाव आदि।

(ब) गगरी के भाव :—
गगरी गिराना, उठाना, फोड़ना, सिर पर से उतारना, रखवाना, उड़ेलना आदि।

(स) नटखटपन के भाव :–
राह रोकना, कलाई पकड़ना, चूड़ियां मुरकाना, चुनरी खींचना, रंग डालना, छीना-झपटी करना, चुटिया खींचना आदि

(द) अन्य कार्य :—
इन भावों में तालबद्ध नृत्य-रचनाएं होती है, जिन पर पद-संचालन का कार्य घुंघरुओं की ध्वनि सहित किया जाता है, जिन्हें नृत्य में बन्दिश की परनें, कवित्त-अंग आदि कहा जाता है जैसे—चीरहरण, माखनचोरी, कंस-वध, गीतोपदेश, कालिय-दमन, विराट स्वरूप आदि।

नायक कृष्ण के लिए भी कत्थकों ने कोई शास्त्रोक्त मुद्राएं, अंग-संचालन एवं भाव-भंगिमाओं का प्रावधान नहीं रखा है, जिससे कि नृत्य के शास्त्रीय पक्ष को मजबूत कर सके। मनमाने अंग-संचालन द्वारा जो भी कार्य रंगमंच पर प्रस्तुत कर दिया जाता है, वही इनके घराने का शास्त्र बन जाता है।

कत्थक में प्रश्नोत्तर प्रणाली

(सवाल–जवाब)

जब नृत्यकार द्रुतगति में अपने कार्य को करने लगता है तो वह प्रश्नोत्तर प्रणाली का सहारा लेकर नृत्य-प्रदर्शन को कुछ समय के लिए और बढ़ा देता है। इस क्रिया में दर्शकों को एक विशेष प्रकार का आनन्द तथा नर्तक को विश्राम मिलता है। प्रश्नोत्तर प्रणाली को बोल-चाल की भाषा में सवाल-जवाब का कार्य कहा जाता है। इस क्रिया में घुंघरुओं द्वारा नर्तक जो ध्वनि निकालता है, उसी ध्वनि का सही अनुकरण तबला या मृदंग वादक अपने वाद्य पर करता है। तबले की ध्वनि घुंघरूओं की ध्वनि से बिलकुल विपरीत होती है परन्तु कुशल तबला-वादक अपने वाद्य पर ऐसी ध्वनियों को निकालने का प्रयास करता है, जो घुंघरुओं की ध्वनि के समान ही सुनाई पड़े। ध्वनि-संवाद की विभिन्न क्रियाओं से दर्शकों को एक प्रकार का आनन्द देने वाली गति मिलती है। इस प्रकार के सवाल-जवाब का कार्य आजकल अन्य वाद्य-वादक भी करते हैं। कला की दृष्टि से यह कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं है किन्तु दर्शकों को इस क्रिया से अवश्य आनन्द प्राप्त होता है।

प्रश्नोत्तर प्रणाली की इस क्रिया में तबले वाले का विशेष कार्य माना जाता है क्योंकि नर्तक अपने पांवों से कोई भी झंकार पद-संचालन द्वारा कर देता है। उसकी लय को समझ कर उसी ध्वनि के अनुकूल तबले में उस क्रिया को सही रूप में निभा देना [illegible] क का[illegible] कार्य है। अधिक देर तक इस क्रिया को करने पर [illegible] है। अतः यह कार्य थोड़े समय तक ही चलता [illegible]

इस प्रणाली का प्रदर्शन करते समय निम्न बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए :—

१. घुंघरुओं से निकाले जाने वाली ध्वनियां स्वाभाविक हों।
२. ध्वनियों का प्रदर्शन ताल वादक की प्रकृति के अनुकूल हो।
३. प्रश्नोत्तरों का विस्तार अधिक लम्बा न हो।
४ कठिन लय में बोलों का प्रदर्शन न किया जावे।
५. उत्तर-प्रत्युत्तर की गति में शिथिलता न आने पावे।

इसके अलावा निम्न बातों का भी ध्यान रखना चाहिए —

१. ध्वनि प्रदर्शन के साथ-साथ आंगिक क्रियाएं भी की जानी चाहिए।
२. ताल-प्रदर्शक को आंगिक क्रियाओं का भी प्रत्युत्तर देना चाहिए।
३. नृत्यमंच पर एक ही स्थान पर ये क्रियाएं न की जावे और मंच पर नर्तक विभिन्न स्थानों पर अपना प्रदर्शन करता रहे।

ध्वनियों के प्रकार

प्रश्नोत्तर-प्रणाली के अनुसार नृत्य-ध्वनियों के तीन भेद हैं :—

(१) एकल ध्वनि (२) संयुक्त-ध्वनि (३) खण्ड-ध्वनि।

(१) एकल ध्वनि :—

इस ध्वनि में केवल एक मात्रा में एक ही प्रकार की ध्वनि या शब्द आते हैं जैसे :— ता, था, ना आदि। यह ध्वनि पृथक् पृथक् होते हुए भी काफी आकर्षक होती है।

प्रत्येक गति को बढ़ाना, विश्रान्ति देना तथा लम्बा खींचना इसका मुख्य कार्य है, जैसे :—

(१) बढ़ाव क्रिया— ता ता ता ता
(२) विश्रान्ति क्रिया— ता ऽ ऽ ऽ
(३) खिंचाव क्रिया— ता — — ता

इन तीनों क्रियाओं का अपने अपने स्थान पर पृथक्-पृथक् महत्व है। बढ़ाव-क्रिया में पदाघात बराबर होता है। विश्रान्ति-क्रिया में पदाघात के बाद आंगिक अथवा वाचिक-क्रिया द्वारा प्रदर्शन किया जाता है। इसी प्रकार खेंचाव-क्रिया भी आंगिक तथा वाचिक अभिनय द्वारा प्रदर्शित की जाती है।

(२) संयुक्त-ध्वनि :—

कम से कम दो ध्वनियों के संयोग से जो ध्वनि उत्पन्न की जाती है, उसे संयुक्त ध्वनि कहते हैं।

इसमें एक मात्रा में दो, तीन, चार शब्दों को प्रगट किया जाता है।

१. दो ध्वनि के शब्द: तिट, तूना, धिता, गिन, नाता आदि।
२. तीन ध्वनियों के शब्द:— तगन, नगन, कतक, तकत, कतिट आदि।
३. चार ध्वनियों के शब्द:- दिगदिग, गदिगन, तिटकिट, धतिगन आदि।

प्रश्नोत्तर प्रणाली में इन ध्वनियों का प्रयोग चार अक्षरों की संयुक्त-ध्वनि तक ही होना चाहिए।

(३) खण्ड-ध्वनि :—

इस क्रिया में ध्वनियों का प्रयोग संयुक्त एवं एकल-ध्वनि की

कत्थक नृत्य का यह प्रदर्शन भावोत्पत्ति से दूर होकर चमत्कार या प्रतियोगिता का स्वरूप है । यह तबला-वादक को एक प्रकार की चुनौती है, जो दर्शकों के सामने दी जाती है । इस चुनौती को स्वीकार करने वाले वादक काफी कुशल अथवा रात-दिन नर्तक की संगत करने वाले होते हैं । इस कारण दोनों का कार्य मंच पर प्रभावशाली रहता है ।

अगर इस क्रिया को नृत्य-नाटिका के लिए भाव-प्रधान गति देकर कार्यान्वित किया जाए तो इसका उपयोग वास्तव में प्रदर्शन को अधिक सफल बनाने में सहायक सिद्ध हो सकता ।

कत्थक नृत्य को रंगमच की दृष्टि से सफल बनाने के लिए आगे इस सम्बन्ध में विभिन्न विषयों पर विचार किया जा रहा है । आज तक जो प्रदर्शन किए जाते रहे हैं उन सब पर महफिल प्रदर्शन शैली का प्रभाव रहा है । जबकि वर्तमान युग में प्रदर्शन रंगमंच प्रणाली को अपनाना अति आवश्यक है ।

इन तीनों क्रियाओं का अपने अपने स्थान पर पृथक्-पृथक् महत्व है। बढ़ाव-क्रिया में पदाघात बराबर होता है। विश्रान्ति-क्रिया में पदाघात के बाद आंगिक अथवा वाचिक-क्रिया द्वारा प्रदर्शन किया जाता है। इसी प्रकार खेंचाव-क्रिया भी आंगिक तथा वाचिक अभिनय द्वारा प्रदर्शित की जाती है।

(२) संयुक्त-ध्वनि :—

कम से कम दो ध्वनियों के संयोग से जो ध्वनि उत्पन्न की जाती है, उसे संयुक्त ध्वनि कहते हैं।

इसमें एक मात्रा में दो, तीन, चार शब्दों को प्रगट किया जाता है।

१. दो ध्वनि के शब्द: तिट, तूना, धिता, गिन, नाता आदि।

२. तीन ध्वनियों के शब्द:— तगन, नगन, कतक, तकत, कतिट आदि।

३. चार ध्वनियों के शब्द:- दिगदिग, गदिगन, तिटकिट, धतिगन आदि।

प्रश्नोत्तर प्रणाली में इन ध्वनियों का प्रयोग चार अक्षरों की संयुक्त-ध्वनि तक ही होना चाहिए।

(३) खण्ड-ध्वनि :—

इस क्रिया में ध्वनियों का प्रयोग संयुक्त एवं एकल-ध्वनि को खण्ड (विश्रान्ति) स्वरूप प्रगट किया जाता है। ऐसी क्रिया में आंगिक अथवा वाचिक क्रिया से ध्वनि की पूर्ति की जाती है। नर्तक एवं ताल-प्रदर्शक दोनों को इसमें विश्रान्ति मिलती है तथा दर्शकों पर इस अभिनय का विशिष्ट प्रभाव पड़ता है। इस क्रिया को करते समय निश्चित ताल एवं लय का ध्यान रखना अति आवश्यक है। इस क्रिया में अधिकतर ताल की खाली भरी का ध्यान नहीं रह पाता और नृत्य भी वास्तविकता से दूर होकर मनोरंजन की ओर अग्रसर हो जाता है।

कत्थक नृत्य का यह प्रदर्शन आरोहावरोह से दूर होकर चमत्कार की प्रतियोगिता का स्वरूप है। यह तबला-वादक को एक प्रकार की चुनौती है, जो दर्शकों के सामने दी जाती है। इस चुनौती को स्वीकार करने वाले वादक काफी कुशल अथवा रात-दिन नर्तक की संगत करने वाले होते हैं। इस कारण दोनों का कार्य मंच पर प्रभावशाली रहता है।

अगर इस क्रिया को नृत्य-नाटिका के लिए भाव-प्रधान गति देकर कार्यान्वित किया जाए तो इसका उपयोग वास्तव में प्रदर्शन को अधिक सफल बनाने में सहायक सिद्ध हो सकता।

कत्थक नृत्य को रंगमंच की दृष्टि से सफल बनाने के लिए आगे इस सम्बन्ध में विभिन्न विषयों पर विचार किया जा रहा है। आज तक जो प्रदर्शन किए जाते रहे हैं उन सब पर महफिल प्रदर्शन शैली का प्रभाव रहा है। जबकि वर्तमान युग में प्रदर्शन रंगमंच प्रणाली को अपनाना अति आवश्यक है।

इसे चतुरस्त्र नाट्यशाला कहा है।

(३) तृतीय श्रेणी की नाट्यशाला की रचना शूद्रों के लिये की जाती थी। इसका माप ३२ हाथ निश्चित था और इसे त्रिभुजाकार रूप में तैयार किया जाता था। भरत ने इसका नाम त्रिकोण नाट्यशाला रखा है।

भारतीय संस्कृति के अनुसार भगवान विष्णु को नाट्यकला का जन्म दाता माना गया है। इन्होंने सर्वप्रथम नारदजी को नाट्य की शिक्षा दी तथा नारदजी से भरतमुनि ने इस कला का ज्ञान प्राप्त किया। भरत का नाट्यशास्त्र इस कला का प्राचीनतम प्रमाणित ग्रन्थ है। नाट्यशाला की परम्परा किस रूप से विकसित हुई, इस सम्बन्ध में ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त नही होती। किन्तु भरत द्वारा वर्णित मध्यम श्रेणी की नाट्यशालाओं की परम्परा सबसे अधिक विकसित हुई।

वर्तमान में मुख्यतः निम्न प्रकार की नाट्यशालाओं के रूप प्रचार में हैं:—

(१) व्यावसायिक रंगमंच (पेशेवर थियेटर):—
इसमें घूमने वाला रंगमच (Moving stage), नृत्य नाटिका रंगमंच (Bale Dancing Theatre) चलचित्र नाट्यशाला, ओपन थियेटर, सिनेमा हॉल आदि शामिल है।

(२) शोकिया रंगमंच— इसके अन्तर्गत प्रमुख रूप से निम्न रंगमंच आते है:— टाऊन हॉल. कॉलिज-स्कूल हॉल, बाल रंगमंच (Children–Theatre)

नृत्योपयोगी रंगमंच

नृत्य रंगमंच से संबंधित कला है। यह नाटक का एक अंग है, अतः इसका प्रदर्शन किसी भी नाट्य मंच पर किया जा सकता है। परन्तु प्रत्येक नृत्यकार को अपने से संबंधित मंच की जानकारी

एवं उसके उपयोग विधि का ज्ञान होना आवश्यक है।

वर्तमान युग में नृत्यकला के चार शिष्ट रूप प्रचलित हैं। उत्तर भारत का कत्थक, दक्षिण का भरतनाट्यम् तथा कथाकली और आसाम प्रान्त का मणिपुरी नृत्य। इन नृत्यों के अलावा प्रत्येक प्रान्त में लोक-नृत्यों का भी प्रचलन है। नृत्यकला के आचार्य अपने शिष्यों द्वारा इन नृत्य प्रणालियों के अलावा नृत्य-नाटिका के रूप में भी विविध नृत्यों को रंगमंच पर प्रस्तुत करते हैं। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए नृत्यकला के प्रदर्शन हेतु एक सुव्यवस्थित रंगमंच की आवश्यकता होती है। सामान्य रूप से नृत्य-मंच की योजना निम्न प्रकार से होनी चाहिए:-

नृत्य मंच

पुरुष साज-सज्जागृह (१)	विश्राम गृह	स्त्री साज-सज्जा गृह (१)
(२)	पात्रों के बैठने का स्थान	(२)
दाँया कोण	मंचपीठ नृत्य-मंच	बाँया कोण

कॉलेज तथा स्कूलों में नाट्य-प्रदर्शन के लिए मंच होते हैं किन्तु उनमें दायें-बायें कोण एवं पीछे के स्थानों में अनेक कमियां रह जाती हैं, जिसके कारण ये मंच नाट्य एवं नृत्य-प्रदर्शन की दृष्टि से पूर्ण नहीं कहे जा सकते। फिर भी इन मंचों पर हर प्रकार के नाटक एवं नृत्यों का आयोजन होता रहता है।

नृत्यमंच-व्यवस्था

नृत्यमंच की योजना के अनुसार नर्तक को निम्न विषयों की जानकारी रखना अति आवश्यक है :—

१. मंच का क्षेत्रफल।
२. मंच का फर्श।
३. मंचपीठ।
४. रंगशीर्ष।
५. प्रकाश योजना
६. ध्वनि एवं संगीत योजना।
७. प्रदर्शन-योजना।

(१) मंच का क्षेत्रफल :—

नृत्यकार को अपनी कला का प्रदर्शन करने से पूर्व मंच के क्षेत्रफल का ज्ञान कर लेना चाहिए। कुशल नर्तक प्रदर्शन से पूर्व मंच का निरीक्षण कर लेते है तथा अपने कदमों से उक्त स्थान को चारों तरफ से माप लेते हैं ताकि समय पर उन्हें आगे-पीछे की क्रिया करते समय असुविधा न रहे और दर्शकों की आँखों के निर्दिष्ट स्थान पर नृत्य की भाव भंगिमाओं द्वारा आकर्षित कर सकें। आजकल कॉलेज एवं स्कूलों का मंच सामान्यतया १६'×१६' का होता है किन्तु बड़े एवं व्यावसायिक मंचों का क्षेत्रफल १२×१० तक भी पाया जाता है।

(२) मंच का फर्श :—

नृत्यकला को प्रस्तुत करने के लिए मंच का फर्श सबसे अधिक साफ-सुथरा एवं समतल होना चाहिए। फर्श जरा सा भी ऊबड़ खाबड़ होने से पद-संचालन क्रिया में बाधा पहुंचती है क्योंकि नृत्य पदाघात एवं घुंघरुओं की ध्वनियों पर ही निर्धारित । नाट्यमंच की तरह इसके फर्श पर दरी या कालीन बिछा कर कार्य नहीं किया जा सकता है। नृत्य करने के लिए लकड़ी या सीमेंट से बना हुआ फर्श उपयोगी माना गया है, जिस पर पद-सचलान की क्रिया प्रत्येक लय में सुविधापूर्वक की जा सके।

(३) मंच-पीठ :—

मंच पर लगाया जाने वाला अन्तिम पर्दा नृत्यकला के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण माना गया है। मंच-पीठ के दृश्य की यह विशेषता होनी चाहिए कि वह कथानक के वातावरण को बनाए। नृत्य-नाटिका आदि के लिए मंच-पीठ को कथानक के आधार पर दृश्य के रूप में सजाया जाता है। साधारणतया नृत्य के मंचपीठ पर नीले रंग का पर्दा लगाया जाता है।

(४) रंगशीर्ष :—

रंगमंच के ऊपरी भाग को रंगशीर्ष कहते हैं। प्राचीन-काल में इस भाग को अनेक प्रकार शिल्पों से सजाया जाता था। आज-कल इस प्रकार की कारीगरी रंगशीर्ष के लिए नहीं की जाती।

(५) प्रकाश योजना :—

रंगमंच पर प्रस्तुत प्रत्येक कार्य को स्पष्ट एवं प्रभावशाली बनाने के लिए विविध प्रकार के प्रकाश की व्यवस्था की जाती है। प्रकाश सम्बन्धी ज्ञान प्रत्ये ो हो आगे इस विषय पर विस्तार से ए

(६) ध्वनि एवं संगीत-योजना :—

वाद्ययन्त्रों के बजाए या गीत को गुनगुनाए बिना नृत्य का प्रदर्शन नहीं हो सकता है। नृत्यकला गायन तथा वादन-कला के आधीन है। अतः प्रत्येक नर्तक अपने से सम्बन्धित गीतों तथा धुनों का ज्ञाता होना है और इनसे अनभिज्ञ नृत्यकार का ज्ञान अधूरा माना जाता है। अतः संगीत एवं वादन कला की जानकारी रखना अति आवश्यक है। इस विषय को आगे स्पष्ट किया जा रहा है।

नृत्यमंच पर प्रवेश तथा निकास

मंच को प्रदर्शन-योजना के अनुसार नृत्यकारों को नृत्य करने के लिए विभिन्न स्थानों से प्रवेश तथा निकास की क्रियाएं करनी होती हैं। इन क्रियाओं के लिए साधारणतया मंच को तीन विभागों में विभक्त कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् नर्तक को अपने निश्चित स्थानों पर प्रवेश निकास तथा अन्य क्रियाएं करनी चाहिए, जिससे कि नृत्यकला का प्रदर्शन मंच की दृष्टि से सफल माना जा सके। मंच का यह विभाजन 'रेखांकन पद्धति' कहलाता है। इसका स्वरूप निम्न प्रकार है :—

रेखांकन प्रणाली

	१	२	३
१		अन्तिम	
२		मध्य	
३		आगे	

नृत्यमंच के फर्श को उपर्युक्त आधार पर दोनों तरफ से तीन-तीन विभागों में विभाजित कर लिया जावे। नं० १ विभाग मंच का अन्तिम स्थान, नं० २ मध्य स्थान तथा नं० ३ आगे का स्थान है। रेखांकन प्रणाली द्वारा मंच पर प्रवेश तथा निकास की क्रिया करने पर साधारण गति में कुल नौ प्रकार दांए तथा नौ प्रकार बांए होते हैं। इन गतियों का अभ्यास कर लेने पर नर्तक को किसी भी प्रकार की असुविधा नहीं रह जाती। मच पर प्रवेश तथा निकास की क्रिया को विलम्बित, मध्य तथा द्रुत तीनों लयों के साथ पृथक्-पृथक् रूप से कराना चाहिए। सर्वप्रथम साधारण गति में और तत्पश्चात् विभिन्न गतियों में अभ्यास कराया जावे। जैसे :—

प्रवेश क्रिया

१. भाव-भंगिमा के साथ प्रवेश।
२. आवेश के साथ प्रवेश।
३. एकाग्रता के साथ प्रवेश।
४. विभिन्न लय एवं पात्रानुसार प्रवेश।

१. भाव भंगिमा क्रिया

उत्तर भारत का शास्त्रीय-नृत्य कत्थक एवं नटवरी है। इस नृत्य का पूर्ण सम्बन्ध राधा-कृष्ण की लीलाओं से है। अतः यहां हम राधा-कृष्ण से सम्बन्धित भाव-भंगिमाओं के आधार पर ही प्रवेश तथा निकास सम्बन्धी चर्चा करेंगे।

राधा का प्रवेश तथा प्रस्थान

१. गगरी के भाव सहित प्रवेश। इस क्रिया में बिना गगरी के गगरी को सिर पर या बगल में रखे हुए बताया जाए।
२. मुकुट का भाव।
३. बांसुरी का भाव।
४. घूंघट का भाव।

कृष्ण का प्रवेश तथा प्रस्थान

१. बंसी बजाने का भाव।
२. मुकुट का भाव।
३. सुदर्शन चक्र का भाव।
४. गिरिवर उठाने का भाव।

(२) आवेग

राधा का प्रवेश तथा प्रस्थान

१. कृष्ण की खोज में।
२. मुरली की धुन सुनने की गति में।
३. सखियों से रूठ कर।
४. कृष्ण से रूठ कर।

कृष्ण का प्रवेश तथा प्रस्थान

१. राधा की खोज मे।
२. होरी खेलने के समय।
३. गगरी छीनने के लिए।
४. अर्जुन के सारथी के रूप में।

(३) एकाग्रता

राधा का प्रवेश तथा प्रस्थान

१. कृष्ण की याद में।
२. मुरली की मधुर धुन सुनने के बाद।
३. काली घटा को देखकर।
४. कृष्ण के रूठ जाने के बाद।
५. वियोग की स्थिति मे।

है। नगमों को बजाने वाला कलाकार लय का पक्का होता है। ये नगमें निश्चित रागों में ही समस्त भारत में प्रचलित हैं, जैसे—चन्द्रकोस, हंसकंकणी, दुर्गा, देश, काफी, भीमपलासी मधुवन्ति आदि।

(२) लय एवं ताल वाद्य :—

नृत्य में बजाये जाने वाले वाद्यों में ताल एवं लय का सबसे अधिक महत्व है। ये वाद्य हो नृत्य की गति को बल देकर विशेष आकर्षक बनाते हैं। शास्त्रीय-नृत्य में बजाये जाने वाले बोलों को घुंघरुओं की झंकार के साथ जब संगत-स्वरूप प्रगट किया जाता है तो नृत्य में सरसता आ जाती है, जिसका आनन्द दर्शक एवं श्रोताओं को विशेष रूप से मिलता है। नृत्य को सफल बनाने में ऐसे अनेक प्रयोग बारम्बार किये जाते हैं। शास्त्रीय नृत्य में बजाये जाने वाले वाद्यों में पखावज (मृदंग) तथा तबला ही प्रमुख रूप से काम में लाये जाते हैं, चाहे वह नृत्य भरतनाट्यम् कथाकली; मणिपुरी अथवा कत्थक ही क्यों न हो। लोक-नृत्य या कथानक-नृत्य के लिए ढ़ोल, नगाड़ा, खजरी, ढफ, डमरू आदि वाद्य-यंत्रों से कथानक-नृत्य के लिए ढ़ोल, नगाड़ा, खंजरी ढफ, डमरू आदि वाद्य-यन्त्रों के माध्यम से लय को प्रस्तुत किया जाता हैं।

नाटक में संगीत की ध्वनियों को विशिष्ट स्थानों पर ही बजाया जाकर संवादों एवं भावों को बल दिया जाता है। परन्तु नृत्य में संगीत प्रारम्भ से अन्त तक प्रमुख है। विशिष्ट भाव-प्रदर्शन के लिए वाद्यों की ध्वनियां तथा नृत्य के बोलों को पढन्त-क्रिया के माध्यम से अधिक रोचक एवं आकर्षक बनाया जाता है।

नृत्य-नाटिका अथवा कथानक-नृत्य को प्रस्तुत करने के लिए

इस विषय में भी नाटक की तरह विशिष्ट ध्वनि के लिए निश्चित स्थान हैं, जिनसे भावो को स्पष्ट करने में बल मिलता है। इस प्रकार राधा-कृष्ण की विभिन्न लीलाओं को अगर नृत्य-नाटिका अथवा कथानक-नृत्य के रूप मे प्रस्तुत किया जाए तो संगीत को विशिष्ट ध्वनियों का प्रयोग रसों के अनुसार निम्न प्रकार से किया जा सकता है :—

त्रिकोण ध्वनियां

नृत्य-प्रदर्शन को सरस एवं भावात्मक बनाने में वाद्य ध्वनियों का बहुत महत्व है। ये ध्वनियां समय-समय पर भावोत्पत्ति मे बड़ी सहायक हैं। इनका विभाजन निम्न प्रकार से किया जा सकता है :—

(१) आघात-ध्वनि :—

प्रत्येक वाद्य से उत्पन्न होने वाली ऐसी ध्वनियो को आघात द्वारा उत्पन्न किया जाता है, जैसे—मिजराब से बजाए जाने वाले वाद्य-यन्त्र से उत्पन्न ध्वनि। तबले-मृदंग आदि वाद्य-यन्त्रों पर निकलने वाले बोल आघात ध्वनि के अन्तर्गत आते हैं।

(२) रेखा-ध्वनि :—

किसी भी वाद्य पर मुख्य स्वर या ध्वनि को आघात करके आगे

या पीछे घसीटा जाता है, जिससे कि ध्वनि से उत्पन्न गति एक रेखा सी खिच जाती है। ऐसी ध्वनि का प्रयोग गज वाद्य पर स्पष्ट रूप से प्रगट होता है, जैसे-सारंगी, दिलरूबा, वायलिन आदि। कुछ कलाकार अन्य वाद्यों पर भी इस प्रकार के प्रयोग करते हैं किन्तु उन रेखाओं की स्थिरता एवं स्पष्टता गज-वाद्य से कम रहती है। फिर भी उनका प्रभाव किसी न किसी अंश में अवश्य होता है, जैसे शहनाई, बंशी, सितार आदि।

(३) कम्पन-ध्वनि :—

एक ही ध्वनि को एक ही स्थान पर कम्पायमान करके उसका प्रयोग किया जाता है। इसका अपना अलग ही प्रभाव होता है। ऐसी ध्वनियाँ प्रत्येक वाद्य-यंत्र पर अपनी-अपनी बनावट के आधार पर उत्पन्न की जा सकती हैं।

इन तीनों ध्वनियों का प्रयोग नृत्यकला में समय-समय पर किया जाता है, जिससे कि मुख्य-ध्वनि को बल मिले। इन ध्वनियों के प्रयोग से भावों को प्रगट करने पर नृत्य में सरसता आकर आनन्दोत्पत्ति होती है। इन ध्वनियों का भावों से इस प्रकार संबंध है :—

(१) रेखा ध्वनि

विलंबित लय—

करुण, भक्ति, वियोग आदि भावों के लिए विलंबित लय का प्रयोग किया जावे।

मध्य लय—

शृंगार, हास्य, विश्वास आदि भावों को प्रकट किया जा सकता है।

द्रुत लय—

उत्साह, कपट, शंका आदि भावों को स्पष्ट किया जावे।

(२) आघात–ध्वनि

विलंबित लय :—

करुण, चिन्ता, श्रम, स्वप्न आदि भावों को दिखाया जावे।

मध्य लय :—

चंचलता, हास्य, अभिमान आदि भाव प्रदर्शित किए जाय।

द्रुत लय :—

वीरता, प्रभावशाली, शक्ति, गर्व आदि भावों को प्रदर्शित किया जावे।

(३) कम्पन–ध्वनि

विलंबित लय :—

करुण, भय, ग्लानि, मरण, दुख, वैराग्य के समय ऐसी ध्वनि का प्रयोग किया जावे।

मध्य लय :—

आनन्द, कम्पन, उग्रता, गद्‌गद्‌ होना आदि भावों के लिए मध्यलय में ध्वनि का प्रयोग किया जाना चाहिए।

द्रुतलय :—

इसमें उत्पन्न होने वाले भाव इस प्रकार हैं :—भयानक, आश्चर्य उथल-पुथल, हाहाकार आदि।

इसके अतिरिक्त कुशल ध्वनि-निर्देशक वातावरण एवं कथानक के आधार पर अनेक ध्वनियों का प्रयोग करके नृत्य को अधिक आकर्षक बना सकता है।

वाद्य–यंत्र एवं रस

(१) शृंगार :—

प्रिय-मिलन या वियोग के समय तन्तु वाद्यों का प्रयोग किया

जावे, जो गज से बजाये जाते हैं।

(२) हास्य :—

विकृत वेशभूषा, धृष्टता, व्यंग, कलह आदि भाव-प्रदर्शन के अवसर पर मिजराब से बजाये जाने वाले वाद्य उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

(३) करुण :—

दुःख, वियोग, अश्रुपात आदि के समय गज से बजने वाले वाद्य कार्य में लेने चाहिए।

(४) रौद्र :—

क्रोध, अभिमान, द्रोह आदि भावों का प्रदर्शन करने के समय सुषिर-वाद्य तथा चर्म वाद्य विशेष उपयोगी है।

(५) वीर रस :—

उत्साह, प्रभाव, शूरता आदि भावों के समय मिजराब से बजने वाले तथा चर्म वाद्य की ध्वनियां विशिष्ट उपयोगी है।

(६) भयानक :—

भय, डर, शून्य, शंका आदि भावों के समय चर्म वाद्य तथा घन वाद्यों की धमाके की ध्वनियां सहायक होती है।

(६) शेष :—

उद्वेग, युद्ध, शांति भक्ति आदि के समय सब वाद्यों का प्रयोग किया जावे।

इसके अलावा संगीत-निर्देशक नृत्य के भावों एवं कथानक को ध्यान में रख कर सहायक ध्वनियों का प्रयोग करता है। ये सब क्रियाएं ध्वनि निर्देशक पर आधारित हैं, जो नृत्य को सफल बनाने में सबसे अधिक कार्य करने वाला माना गया है। नृत्य के कथानक एवं वातावरण के अनुसार कुशल निर्देशक सम्पूर्ण व्यवस्था कर लेता है। साथ ही नर्तक का भी अपने से सम्बन्धित संगीत-ध्वनियों का ज्ञान रखना अति आवश्यक है, जिससे कि वह अपने नृत्य को अधिक रोचक बना कर भावाभिव्यक्ति कर सके।

[illegible]

प्रकाश व्यवस्था

नृत्यमंच की व्यवस्था नाट्य मंच के आधार पर ही आज तक रही है। नृत्य प्रदर्शन के आयोजनों को प्रस्तुत करने के लिए न तो हमारे प्राचीन ग्रन्थों में पृथक् मंच-व्यवस्था का वर्णन मिलता है और न आज भी पृथक् से इस विषय के लिए मंच की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए नृत्यमंच पर प्रकाश व्यवस्था की रूप-रेखा नाट्य मंच के आधार पर ही की जाती है। किन्तु नाटक में अनेक प्रकार की प्रकाश-योजना होती है जबकि नृत्य के लिए ऐसी प्रकाश-योजना को कार्य में नहीं लिया जाता। हमें रंगमंच पर नाटक तथा नृत्य प्रदर्शन हेतु प्रकाश सम्बन्धी पूरी जानकारी करने की आवश्यकता है। रंगमंच के लिए प्रकाश-योजना के दो प्रकार माने गए हैं:- चल प्रकाश और अचल प्रकाश।

(१) चल-प्रकाश :—

मंच पर चल-प्रकाश की व्यवस्था तीन प्रकार से की जाती है। प्रथम व्यवस्था के लिए प्राकृतिक दृश्यों के रूप में प्रकाश को चल रूप में माना है। जैसे :—सूर्य और चंद्रमा का उदय या अस्त होना। ऐसे दृश्य नृत्यकला के प्रदर्शन में प्रयुक्त नहीं किये जाते। किन्तु नृत्य-नाटिका के लिए यदि ऐसे दृश्यों का आवश्यकता हो तो ऐसी व्यवस्था की जा सकती है। द्वितीय प्रकाश-व्यवस्था का कार्य पात्र से सम्बन्धित होता है, जैसे पात्र का लालटेन, मोमबत्ती या टार्च आदि के साथ प्रवेश। नृत्य में ऐसी व्यवस्था भी नहीं होती। तृतीय प्रकाश-व्यवस्था पात्र के भावों को अधिक स्पष्ट एवं आकर्षक बनाने हेतु प्रकाश-व्यवस्था

रूप से प्रयुक्त की जा सकती है। इस प्रकार अवस्था में पात्र या नर्तक के चलन के आधार पर उसके चेहरे पर या किसी विशेष अंग पर रोशनी डाली जाती है, जो नर्तक द्वारा प्रदर्शित भावों को स्पष्ट करके वातावरण बनाने में सहायक होती है। ऐसा प्रकाश पात्र या नट के साथ बराबर चलता रहता है।

(२) अचल प्रकाश :—

एक स्थान पर स्थिर प्रकाश को अचल प्रकाश कहते हैं। इसके दो भेद हैं— व्यवस्था-गत और नाट्य-गत।

व्यवस्थागत—प्रकाश रंगमंच पर पहले से ही निश्चित स्थान पर रहते हैं, जिसका प्रयोग प्रकाश-व्यवस्थापक द्वारा किया जाता है परन्तु नाट्य-गत प्रकाश का सम्बन्ध पात्र से है, जिसका प्रयोग पात्र करता है, जैसे—पढ़ने के लिए दीप जलाना, पूजा के लिए दीपक जलाना आदि।

व्यवस्था-गत प्रकाश के १० भेद अभिनय नाट्य शास्त्र में कहे गए हैं। नृत्य मंच के लिए इनमें से कुछ ही प्रयुक्त किये जाते हैं। नाट्य-गत प्रकाश का प्रयोग भी नृत्यमंच में नहीं होता है। नृत्यमंचोपयोगी प्रकाश निम्न प्रकार से है।

(१) शीर्षदीप (Head Light) नृत्यमंच में सफेद बत्तियाँ छत में आगे, पीछे तथा बीच में तेज प्रकाश हेतु क्रम से पंक्तिबद्ध लगाई जाती हैं।

(२) तलदीप (Foot Light) रंगमंच के आगे की ओर नीचे की पंक्ति में कुछ बत्तियाँ लगाई जाती हैं। इनको लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि दर्शकों को ये बत्तियाँ दिखलाई न दें।

(३) स्थलदीप (Spot Light) नर्तक के विशेष भावों को

प्रकाश द्वारा अधिक स्पष्ट करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

(४) कोण महादीप :—रंगमंच के दोनों ओर के किनारों पर ऐसी प्रकाश-योजना रहती है। नृत्यकार की भाव-भंगिमा को विशेष आकर्षक बनाने के लिए इसके लिए रंगीन कागजों का भी उपयोग किया जाता है। कहीं कहीं स्थायी रूप से रंग बदलने के लिए कांच की चरखी को भी काम में लिया जाता है।

(५) चित्रदीप (?) आजकल नृत्यमंच पर दृश्यों को दिखाने के लिए प्रोजेक्टर का प्रयोग भी किया जाता है। नृत्य-कथानक से सम्बन्धित दृश्यों को चित्रदीप के माध्यम से दिखलाकर नृत्य के वातावरण को स्पष्ट किया जाता है।

(६) छायाचित्र (?) इसमें सफेद पर्दे के पीछे से प्रकाश डाला जाता है। प्रकाश के सामने तथा पर्दे के पीछे नृत्य किया जाता हैं, जिसकी छाया पर्दे पर गिरती है और यह प्रदर्शन छाया के रूप में ही होता है। छाया-चित्र का पर्दा साफ-सफेद एवं गाढ़ा होना चाहिए, जिसमें से प्रकाश छनकर बाहर न आ सके।

नृत्यमंच के लिए इससे अधिक प्रकाश-योजना करने की आवश्यकता नहीं रहती परन्तु नाट्य-मंच के लिए इससे कहीं अधिक प्रकाश की आवश्यकता होती है।

नृत्यमंच और रंगीन प्रकाश

रंगमंच पर नृत्य करते समय उसे अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए विविध प्रकारों के रंगों का प्रकाश के द्वारा बदला जाता है, जिससे नर्तक द्वारा प्रगट किये जाने वाले भावों को बल मिलता है। अतः रंगीन दृश्यों को दिखाने के लिए रंग-व्यवस्था किस रूप में की जावे, इसका ज्ञान प्रत्येक नृत्यकला के विद्यार्थी को अवश्य होना चाहिए।

हम देखते हैं कि व्यावहारिक जीवन में सफेद प्रकाश ही सर्वोप-योगी है। यह प्रकाश हमें सूर्य से प्राप्त होता है। इस प्रकाश के कारण हम सब वस्तुओं को देख सकते हैं। इस सफेद प्रकाश में अनेक रंग छुपे हुए हैं, जिनका ज्ञान हम इन्द्र-धनुष से कर सकते हैं। इन्द्रधनुष में केवल सात रंग दिखलाई देते हैं किन्तु रंगों की संख्या इसमें कहीं अधिक है। रंगमंच की दृष्टि से जिन रंगों की उपयोगिता हमें समझना है, उनकी संख्या कुल चौदह है, जिनके नाम निम्न प्रकार हैं :—

लाल, नारंगी, नारंगी-पीला, पीला, नीबू जैसा, पीला-हरा, सेब जैसा हरा, हरा, नीला-हरा, गहरा नीला (मोर पंखी), हल्का नीला, आसमानी, नीला और जामुनी।

नृत्यकला के मंच पर उपयोग किए जाने वाले रंगों की संख्या भी है, जिनका प्रयोग प्रकाश-व्यवस्थापक प्रकाश-दीपों के द्वारा रंग योजना को संपादित करता है। इन रंगों में मुख्य तीन ही प्रकार के रंग हैं, जिनके मिश्रण से अन्य रंगों की उत्पत्ति हो सकती है। रंगों में लाल, पीला और नीला ये तीन रंग प्रमुख माने गए हैं।

शेष मिश्रित रंगों के अन्तर्गत आते है। नृत्यकला के लिए उपयोगी रगों के नाम निम्न प्रकार हैं :—

मुख्य रंग सफेद

सहायक रंग		मिश्रित रंग		
नीला	—	हरा-नीला,	मयूर पंखी,	आसमानी।
पीला	—	पीला-नीला,	नारंगी,	हरा।
लाल	—	किरमची,	कत्थई,	बैंगनी।

इन रगों को आपस में मिश्रित करने पर निम्न प्रकार की क्रियाएं सामने आती हैं :—

१. प्रतिबिंबित क्रिया।

२. पाचन क्रिया।

३. आर-पार वहन क्रिया।

उपर्युक्त क्रियाओं को स्पष्ट करने के लिए निम्न प्रकार से प्रयोग करना चाहिए :—

रंगमंच पर सफेद पर्दा लटका दीजिए। उसके आगे लाल रंग की कोई वस्तु रखिए। तत्पश्चात् उक्त वस्तु पर नीले रंग का प्रकाश डालिए तो वस्तु का रंग परिवर्तित दिखलाई देगा। इस मिश्रण क्रिया द्वारा वस्तु का रंग बैंगनी दिखलाई देगा क्योंकि मूल रंग को प्रकाश ने प्रतिबिंबित कर दिया तथा लाल रंग, नीले रंग को पचा जाने के कारण दर्शकों को वस्तु का रंग बदला हुआ दिखलाई देने लगा, जबकि वास्तव में वस्तु का रंग लाल ही है।

इसी प्रकार लाल वस्तु को नीले पर्दे के आगे रखिए तथा पर्दे के पीछे से प्रकाश डालिए। पर्दे को पारकरके वस्तु पर गिरने वाले प्रकाश से उसका रग बदला हुआ दिखलाई देगा। इस प्रकार की प्रकाश-व्यवस्था को आरपार क्रिया कहा जाता है।

इसी प्रकार रंग-व्यवस्था करने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) किसी वस्तु पर दूर से प्रकाश डालते हैं। और फिर उसी प्रकाश को वस्तु के समीप से डालते हैं तो वस्तु के रंग में कुछ परिवर्तन दिखलाई देता है। यह क्रिया प्रकाश की प्रमाणिक क्रिया के अन्तर्गत आती है, जिससे प्रकाश की दूरी तथा समीप सम्बन्धी माप का ज्ञान होता है।

(२) किसी चमकदार वस्तु को एकाग्र दृष्टि से देखिए, जैसे.—तेज बल्ब का प्रकाश, सूर्य किरण, दीपक ज्योति आदि। इसके पश्चात् तुरन्त आंखें बन्द करेंगे तो आपको लाल रंग का आभास होगा। तत्पश्चात् लाल प्रकाश पर दृष्टि स्थिर करके तुरन्त सफेद रोशनी पर दृष्टि डालेंगे तो आपको आंखों के आगे हरी-नीली छायाएं दिखलाई देंगी इस क्रिया को मानसिक प्रकाश छाया लक्षण कहते है।

(३) एक ही साथ एक रंग पर दूसरे विरोधी रंगों को डालते जाइए इस प्रकार के प्रकाश से आपको रंगों के अनेक अद्भुत दृश्य दिखलाई देंगे। हमारी आंखें ऐसी रंग-व्यवस्था को अधिक देर तक देखना पसन्द नहीं करती है तथा लगातार ऐसे बदलते रंगों को देखने से आंखों को तकलीफ होती है। इस क्रिया को साथ-विरोध क्रिया कहा गया है।

साधारण रूप से रंग सम्बन्धी योजना के अनुसार रंगमंच पर इन बातों का बराबर ध्यान रखा जावे तो प्रदर्शन कार्य में रंग सम्बन्धी अव्यवस्था नहीं हो सकती और प्रस्तुत कार्यक्रम में सफलता की मात्रा विशेष हो जाती है।

रंग और भाव

शास्त्रकारों में साधारण रूप से रंगों के साथ भावों के लक्षण

निम्न प्रकार से कहे हैं :—

(१) सफेद रंग :—

पवित्र, निर्दोष, नम्र, सत्य, शान्त, विशुद्ध आदि भावों को स्पष्ट करता है।

(२) लाल रंग :—

नर्मी, गुस्सा, खून, अग्नि, तिरस्कार आदि भावों को प्रगट करने वाला है।

(३) काला रंग :—

दुःख, भय, मृत्यु, त्रास, विलाप आदि भावों को प्रगट करता है। यह रंग सफेद के विपरीत लक्षण वाला है।

(४) नारंगी रंग :—

हास्य, आनन्द, पानघर, उष्ण आदि भावों को प्रगट करता है।

(५) पीला रंग :—

पतन, डरपोक, बीमार, आलस्य आदि लक्षणों को प्रगट करता है।

(६) नीला रंग :—

वसन्त, श्रद्धा, शक्ति, यौवन, अमरत्व, विजय, हर्ष आदि भावों को प्रगट करता है।

(७) कत्थई :—

इस रं[illegible] जैसे ही माने गए हैं।

(८) राखई [illegible]

नम्र। [illegible] पाद, तपस्या

को [illegible]

(९) हरा रंग

दुःख, अ[illegible] तथा

निम्न प्रकार से कहे हैं :—

(१) सफेद रंग :—

पवित्र, निर्दोष, नम्र, सत्य, शान्त, विशुद्ध आ
स्पष्ट करता है।

(२) लाल रंग :—

गर्मी, गुस्सा, खून, अग्नि, तिरस्कार आदि भा
करने वाला है।

(३) काला रंग :—

दुःख, भय, मृत्यु, त्रास, विलाप आदि भ
करता है। यह रंग सफेद के विपरीत लक्षण वाल

(४) नारंगी रंग :—

हास्य, आनन्द, पानघर, उष्ण आदि भावों को प्रग

(५) पीला रंग :—

पतन, डरपोक, बीमार, आलस्य आदि लक्षणों को
है।

(६) नीला रंग :—

बसन्त, श्रद्धा, शक्ति, यौवन, अमरत्व, विजय, हर्ष
को प्रगट करता है।

(७) कत्थई :—

इस रंग के लक्षण नारंगी रंग जैसे ही माने गए हैं

(८) राखई (सलेटी) :—

नम्रता, उदासी, निश्चय, विषाद, तपस्या
को प्रकट करता है।

(९) हरा रंग :—

दुःख, आकाश, स्वर्ग, दरिया, गम्भीर, आशा

(३) एक-एक मात्रा की गति पर पाँव रखना ।

हीन या अधम श्रेणी के व्यक्ति इस चाल के चलने वाले माने गये हैं, जैसे—सेवक आदि ।

इसके अलावा नर्तक की चाल विभिन्न वातावरण एवं पात्र की गति के गुणानुसार मन्द्र, मध्य, द्रुत मानी गई है ।

चाल के कार्य एवं गुण

(१) मन्दगति—(चार मात्रा) :—
इस चाल के कार्य एवं गुण भूख, थकान, श्रम, बीमारी, आश्चर्य कपट तथा शृंगार आदि हैं ।

(२) मध्य गति :—(दो मात्रा)
आश्चर्य, निमन्त्रण, अनिष्ट, अव्यवस्था आदि कार्य एवं गुण इसके अन्तर्गत आते हैं ।

(३) द्रुत गति :—(एक मात्रा)
हर्ष, आवेग आदि के समय द्रुत चाल का प्रयोग किया जाता है।

प्रत्येक नर्तक को उपर्युक्त आधार पर वर्णित चालों को ध्यान में रखकर अपने नृत्य का प्रदर्शन करना चाहिए । नाट्यकला के आचार्य भरत ने विभिन्न रसों के अनुसार गति के भेद निम्न प्रकार से कहे है—

(१) कोमल गति :—
शृंगार रस के कार्य करते समय प्रत्येक स्त्री और पुरुष को कोमल गति का प्रयोग करना चाहिए ।

(२) विकृत गति :—
गुप्त मिलन एवं पागलपन की स्थिति में विकृत गति का प्रयोग करना चाहिए ।

(३) विक्षिप्त गति :—
हास्य रस के समय इस गति का प्रयोग करें ।

पद्-संचालन (चाल)

नृत्य को प्रस्तुत करने के लिए नृत्यकार को विभिन्न चालों की जानकारी होनी आवश्यक है। आजकल नृत्य का प्रदर्शन रंगमंच पर किया जाता है। अतः रंगमंच पर किया जाने वाला नृत्य महफिल में प्रदर्शित नृत्य-योजना से भिन्न होगा। नृत्यकला का मंच नाट्य-मच से काफी भिन्न होता है किन्तु साधारणतया मंच पर पेशेवर-रूप में कार्य करने वाली नृत्य-मण्डलियों का सदा से ही अभाव रहा है। इसी कारण वर्तमान समय में नृत्य-प्रदर्शन के कार्यक्रम में जिस रूप से मंच व्यवस्था होती हैं, उसी के अनुसार प्रस्तुत कर दिए जाते हैं।

नृत्य-शास्त्र के अनुसार नर्तक द्वारा प्रदर्शित किये जाने वाले नृत्य को कथानक के आधार पर चाल चलनी पड़ती है। कथानक के पात्रों की योजना के अनुसार चाल को सही रूप से प्रस्तुत करने पर ही नृत्य का वास्तविक उद्देश्य सफल माना जा सकता है। चाल सम्बन्धी सिद्धांत निम्न प्रकार से निश्चित किये जा सकते हैं :—

(१) चार-चार मात्राओं की गति पर एक-एक पाँव को रखना। ध्यान रखना चाहिए कि ऐसी चाल राजा-महाराजा तथा देवी देवताओं की मानी है और **उत्तम श्रेणी** के पात्र इसके अन्तर्गत आते हैं।

(२) दो-दो मात्राओं की गति पर पांव रखना।
मध्यम श्रेणी के पात्र इस प्रकार की चाल चलते हैं, जैसे :— मन्त्री तथा अन्य मध्यम-वर्ग के लोग।

(३) एक-एक मात्रा की गति पर पांव रखना ।

हीन या अधम श्रेणी के व्यक्ति इस चाल के चलने वाले माने गये हैं, जैसे—सेवक आदि ।

इसके अलावा नर्तक की चाल विभिन्न वातावरण एवं पात्र की गति के गुणानुसार मन्द्र, मध्य, द्रुत मानी गई है ,

चाल के कार्य एवं गुण

(१) मन्दगति—(चार मात्रा) :—

इस चाल के कार्य एवं गुण भूख, थकान, श्रम, बीमारी, आश्चर्य कपट तथा शृंगार आदि हैं ।

(२) मध्य गति :—(दो मात्रा)

आश्चर्य, निमन्त्रण, अनिष्ट, अव्यवस्था आदि कार्य एवं गुण इसके अन्तर्गत आते हैं ।

(३) द्रुत गति :—(एक मात्रा)

हर्ष, आवेग आदि के समय द्रुत चाल का प्रयोग किया जाता है।

प्रत्येक नर्तक को उपर्युक्त आधार पर वर्णित चालों को ध्यान में रखकर अपने नृत्य का प्रदर्शन करना चाहिए । नाट्यकला के आचार्य भरत ने विभिन्न रसों के अनुसार गति के भेद निम्न प्रकार से कहे हैं—

(१) कोमल गति :—

शृंगार रस के कार्य करते समय प्रत्येक स्त्री और पुरुष को कोमल गति का प्रयोग करना चाहिए ।

(२) विकृत गति :—

गुप्त मिलन एवं पागलपन की स्थिति में विकृत गति का प्रयोग करना चाहिए ।

(३) विक्षिप्त गति :—

हास्य रस के समय इस गति का प्रयोग करें ।

(४) शिथिल गति :—

करुण रस के नृत्य-प्रदर्शन के अवसर पर इस गति का प्रयोग करना चाहिए। इसमें पात्रों के स्वभाव का भी ध्यान रखना चाहिए।

(५) रौद्र गति :—

राक्षसों की भूमिका में यह गति स्वाभाविक है। इस गति में द्रुत-लय का प्रयोग किया जाता है।

(६) वीर गति :—

वीरता, गौरव आदि भावों में इसका प्रयोग किया जावे।

(७) भय-गति :—

डरते हुए, इधर-उधर देखते हुए, कम्पन्न की स्थिति में इसका प्रयोग किया जाता है।

इसके अलावा कथानक की घटना के भावों को प्रदर्शित करने के लिए नर्तक को अन्य गतियों का भी प्रयोग करना पड़ता है, जैसे :— अंध-गति, संकोच-गति, विभत्स गति आदि। नाटक में इनका प्रयोग साधारण रूप ये किया जाता है परन्तु नृत्य में सभी गतियों का चलन लयवद्ध होता है।

जीवन में अनेक कार्य ऐसे भी होते हैं, जिनका उपयोग चाहे-अनचाहे रूप से व्यक्ति को करना होता है। ऐसे कार्यों की गति निम्न प्रकार से है :—

(१) पर्वत तथा पेड़ पर चढ़ना, नदी एवं नालों को पार करना।

(२) नीचे स्थान से ऊपर चढ़ना तथा ऊंचे स्थान से नीचे उतरना।

(३) पानी, कीचड़, रेत, कंकड़ तथा कांटों पर चलना।

इनके अलावा नृत्य में सिंह-गति, गज-गति, अश्व-गति, सर्प-गति आदि का उल्लेख भी मिलता है। नाट्य एवं नृत्य दोनों विषयों के प्रदर्शन हेतु नट को अपने विषय एवं घटना के

अनुसार विभिन्न गतियों का प्रयोग करना पड़ता है। धीरे-धीरे अभ्यास करने पर इन गतियों पर नर्तक का अधिकार हो जाता है और वह अपने नृत्य द्वारा रंगमंच पर आसानी से सफलता प्राप्त कर लेता है।

अभ्यास

मानव शरीर की नींव पांवों पर आधारित है। इस नींव को मजबूत बनाने के लिए कठिन अभ्यास की आवश्यकता है। नृत्यकला की दृष्टि से शरीर के इन अंगों का विविध प्रकार से संचालन कर लेने वाला नर्तक अपनी कला में सुगमता पूर्वक रसोत्पत्ति कर सकता है। अंग-प्रत्यंग की गति में स्थिरता, संतुलन तथा सावधानी लाने के लिए अभ्यास करना आवश्यक है, जिससे कि नृत्यकला के प्रदर्शन को बल प्राप्त हो सके।

सर्व प्रथम हम पांवों पर खड़े होते है और उसके बाद चलते हैं। यह हमारा रात-दिन का कार्य है किन्तु इतने से कार्य को रंगमंच पर करने के लिए किसी विद्यार्थी को कहा जावे तो वह झेंप जाएगा और उसकी चाल में अन्तर आ जाएगा। सामान्य रीति से कोई भी व्यक्ति इस क्रिया को मंच पर सफलता पूर्वक नहीं निभा सकता, इसलिए रंग-मंच पर आने से पूर्व नर्तक को अभ्यास कराया जाता है। किसी विशेष भाव को प्रगट करने के लिए चलने की क्रिया को भावानुसार करना होता है,जिसके लिए पांवों को रंगमंच पर सचेत होकर रखना पड़ता है। रंगमंच पर पद-संचालन करने की दृष्टि से निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए :—

१. कोमलता।
२. संयम।
३. सामर्थ्य।

४. आघात-प्रत्याघात

५. दिशा रेखा-ज्ञान।

(१) कोमलता

पांवों में कोमलता लाने के लिए निम्न प्रकार

व्यायाम करना चाहिए :—

१. दाहिने पांव को आगे-पीछे कीजिए।

२. दाहिने पांव को दांए-बांए कीजिए।

३. दाहिने पांव को गोलाकार रूप में चलाइए।

४. दाहिने पांव के पन्जे एवं एड़ी से तालबद्ध ठोकर

५. पैर को आगे-पीछे झुलाइए।

इसी प्रकार बांए पांव की क्रियाएं

संचालन में सुविधा होगी और कोमलता

(२) संयम

पांवों की हर स्थिति पर नर्तक को अ

कि भाव-प्रदर्शन की क्रिया में सफलता प्राप्त

१. पैरों की अंगुलियों पर खड़ें रहिए।
कीजिए, फिर मूल स्थिति में आ

२. पैरों को थिरकाते हुए आगे चलिए।

३. प्रत्येक दिशा में निम्न प्रकार से गति

(अ) त्रिकोण गति।

(ब) सर्पाकार गति।

(स) गोलाकार गति।

(द) चतुस्त्र गति।

४. चार कदम द्रुतलय में चलिए, दो कदम
चक्कर लगाइए। इसी रीति से रंगमंच पर
चलते आइए।

५. द्रुत-गति में दौड़िए, गति बदलिए और रेखांकन विधि का प्रयोग करते हुए त्रिकोण-गति से चलिए ।

(३) सामर्थ्य

नृत्यकार को भाव-प्रदर्शन हेतु अंगों द्वारा विभिन्न चेष्टाएं करनी पड़ती हैं । जब भावावेश में नर्तक की आंगिक-गति में स्थिरता नहीं रह पाती तो पद-संचालन क्रिया में अन्तर आ जाता है । अतः नृत्यकार को हर स्थिति में सामर्थ्यवान होना चाहिए ।

(४) आघात-प्रत्याघात

विभिन्न चालों को बदल-बदलकर भावानुसार चलने की क्रिया को आघात-प्रत्याघात कहते हैं ।

(५) दिशा-रेखा

जो भाव अपने हृदय मे प्रगट हो, उसी के अनुसार निश्चित क्रिया द्वारा रंगमच पर सुन्दर तरीके से उसे प्रदर्शित करने की क्रिया को दिशा-रेखा कहते हैं ।

वेशभूषा एवं शृंगार-सज्जा

नृत्य को प्रस्तुत करने वाले नर्तक और नर्तकी को कथानक अथवा किसी विशेष नृत्य-शैली के अनुसार वेश धारण करना पड़ता है। रंग-मंच पर नर्तक के प्रवेश करते ही दर्शकों को यह भान हो जाता है कि प्रस्तुत किये जाने वाला नृत्य कौन से देश का है और वहां के लोगों की संस्कृति का स्वरुप कैसा है ? वेशभूषा का धारण धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक-व्यवस्था को ध्यान में रखकर किया जाता है किन्तु एक पक्ष इसका और भी है, जिसमें व्यक्ति विचित्र-वेश धारण करता है। वेश धारण करने के लिए मनुष्य शरीर की रचना के अनुसार तीन अंग हैं, जिन पर आवश्यकतानुसार वस्त्र धारण किये जाते हैं :—

पुरुषों सम्बन्धी वस्त्र

(१) सिर :—मुकुट, पगड़ी, टोपी, साफा, ताज, टोप आदि।

(२) शरीर :—(मध्य अंग) बनियान, कुर्ता कमीज, कोट, शेरवानी, चोगा आदि।

(३) पांव :—धोती, पाजामा, पेन्ट, हाफ पेन्ट, सलवार आदि।

स्त्रियों सम्बन्धी वस्त्र

(१) सिर :—स्त्रियों के सिर के लिए मुकुट के अतिरिक्त पृथक् से कोई वस्त्र भारतीय जीवन में नहीं है। वे साड़ी, ओढ़नी, चुन्नी आदि, जो शरीर के अंग से सम्बन्धित वस्त्र है, धारण करती हैं। रानी, महारानी, देवी आदि के शीश पर मुकुट रहते हैं।

(२) शरीर (मध्य अंग) :—ब्लाउज, धोती, कुर्ती, कमीज आदि। इनके अलावा शरीर को ढकने के लिए साड़ी, ओढ़नी भी पहनती हैं।

(३) पांव:—लंहगा, पेटीकोट, सलवार, चुस्त पाजामा, घाघरा आदि पहने जाते हैं।

नृत्यकला का प्रदर्शन करने के लिए मंच पर आने से पूर्व निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) कथावस्तु के वातावरण एवं पात्र-योजना को ध्यान में रख कर वेश धारण किया जाना चाहिए।

(२) यह विशेष रूप से ध्यान में रखने योग्य है कि नृत्य करते समय पहिने हुए वस्त्रों से अंग-संचालन एवं भाव-भंगिमा प्रकट करने में बाधा न पहुंचे। अतः न तो इतना ढीला वस्त्र पहिना जावे जिससे कि अंग-प्रत्यंग की मुद्राएं छुप जाएं और न चुस्त कपड़ा ही पहिना जावे, जो अंग-प्रत्यंगों की तोड़-मरोड़ की क्रियाओं को प्रस्तुत करने में किसी प्रकार बाधक हो।

वेशधारण के पश्चात् नर्तक का दूसरा कार्य साज-शृंगार का है, जिसमें वह शरीर के अंग-उपांगों को विविध आभूषणों, पुष्पों आदि प्रसाधनों से सजाता है। यह शृंगार भी इतना अधिक नहीं होना चाहिए, कि वह नृत्य करते समय टूट-टूट कर रंगमंच पर बिखरता जावे। किन्तु इतना कम भी शृंगार न हो कि नर्तक के स्वाभाविक सौन्दर्य को निखार न सके। नाटक में पात्र की वेशभूषा हर दृष्टि से पूर्ण होती है। किन्तु नृत्य में उस दृष्टि को ध्यान में रखकर वेश धारण करने से आंगिक क्रियाओं को बाधा पहुंचती है। नृत्यकला में आंगिक अंग-प्रत्यंग के संचालन को ही विशेष महत्व दिया गया है। भरत नाट्यशास्त्र में मतानुसार वेशधारण के तीन प्रकार बताए हैं

(१) उत्तम श्रेणी (शुद्ध वेष) :—

शुभ एवं, सात्विक कार्य, देवर्षि, शास्त्र-ज्ञाता आदि।

(२) मध्यम श्रेणी (विचित्र-वेष) :—

राजा, देवता, प्रधान, क्षत्रिय, दानव आदि।

(३) अधम श्रेणी (मलीन-वेष) :—

तामसिक वृत्ति वाले मनुष्य, राक्षस, भूत आदि।

प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार वेश धारण करते हैं परन्तु कुछ सामाजिक व्यवस्था ऐसी बनी हुई है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति मान्यता देता है और उसी के अनुकूल वेश-धारण किया जाता है। इस नियम को रगमंच पर प्रदर्शन देने वाले नट भी पूर्णतया पालन करते हैं, जैसे- एक भिखारिन को रेशमी साड़ी पहिनाना तथा एक रईस को फटे-पुराने वस्त्रों को पहिनाकर मंच पर प्रस्तुत कभी नहीं किया जाता।

साज-शृंगार (मेक-अप)

आजकल मेक-अप का कार्य क्षेत्र विस्तृत हो गया है। प्राचीन काल में विशेष अवसरों पर ही साज-शृंगार किया जाता था। परन्तु आज का साज-शृंगार प्रतिक्षण का बना हुआ है, ऐसी स्थिति में प्राचीन मत आज की स्थिति में कहां तक लागू हो सकते हैं, यह एक विचारनीय प्रश्न है। फिर भी शास्त्रीय पक्ष की जानकारी अवश्य कर लेनी चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति का मूल-वर्ण (रंग) पृथक्-पृथक् होता है। शृंगार योजना के अनुसार नट या नर्तक जिस पात्र का अभिनय करना चाहता है, उसी के अनुसार वर्ण, वेशभूषा एवं साज-सज्जा को धारण करता है। इस व्यवस्था को पूर्णतया निभाने के लिए यदि वह देश काल, पद और जाति को ध्यान में रखकर अपने आपको सजाता है तभी कला-प्रदर्शन में सफलता प्राप्त कर सकता है।

नर्तक के शरीर का जो मूल रंग है, उसको ध्यान में रखते हुए रंग भूषा-नियोजन करना चाहिए। नाट्य शास्त्र के अनुसार मानव के मुख्य रंग चार प्रकार के कहे गए हैं। इन रंगों को अन्य रंगों के साथ मिश्रित करने से निम्न प्रकार के रंग बनेंगे जिनका प्रयोग रंग-नियोजन के अनुसार मेक अप क्रिया हेतु किया जा सकता है। मानव-शरीर की त्वचा के इस प्रकार से मूल-रंग हैं :—सफेद, पीला, लाल और काला इन मूल-रंगों के अलावा मिश्रित-रंगों का वर्णन निम्न प्रकार है :—

१. हरा और नीला	=	कषाय वर्ण
२. सफेद और पीला	=	पाण्डु वर्ण
३. सफेद और लाल	=	पद्म वर्ण
४. सफेद और काला	=	कबूतरी वर्ण
५. लाल और पीला	=	गौर वर्ण
६. पीला और काला	=	हरित वर्ण

इस प्रकार विभिन्न रंग की त्वचा वाले व्यक्ति के लिये अलग-अलग मिश्रित रंगों का प्रयोग किया जावे। रंग-नियोजन का अध्ययन हम इस संसार में रात-दिन रह कर भी कर सकते हैं। अनेक प्रकार के व्यक्ति इस संसार में हैं, जिनकी त्वचा का अध्ययन कीजिये। आपको पृथक्-पृथक् रूप से त्वचाओं का रंग रूप मिलेगा। इनका अध्ययन करके योग्य एवं कुशल रंग-निर्देशक उचित प्रकार से साज-शृंगार करके पात्रों को सजाते हैं। इस क्रिया में युवक व्यक्ति को वृद्ध तथा वृद्ध व्यक्ति का युवा बनाने का कौशल होता है। इसके अतिरिक्त रंगमंच के विविध प्रकारों को भी ध्यान में रखा जाता है। जो मेकअप (साज-शृंगार) बन्द नाट्यशाला के लिए किया जाता है, उसका प्रयोग खुले-रंगमंच पर असफल हो जाता है क्योंकि इन समस्त कार्यों का सम्बन्ध प्रकाश से है।

आज के विद्युत्-युग के रंगमंच पर भरतनाट्यशास्त्र के

सिद्धांत लागू नहीं होते। फिर भी इनका ज्ञान अति आवश्यक है। वेश-भूषा का सम्बन्ध प्रकाश योजना से बहुत अधिक सम्बन्धित होने के कारण आधुनिक-युग की प्रकाश-व्यवस्था के अनुसार अन्य विषयों पर भी उसी आधार पर ध्यान देना चाहिए। आज प्रकाश-व्यवस्था के विविध प्रयोग करके इस कला को नवीन रूप दिया जा रहा है। रंगमंच पर प्रदर्शन को सफल बनाने के लिए आधुनिक उपकरणों के आधार पर ही इस युग में रंगमंच-निर्देशन कार्य किया जाना आवश्यक है।

किसी भी व्यक्ति या पात्र को सजाने के लिए चेहरे पर उसकी त्वचा के मूल रंग को छुपाने के लिए अन्य रंग लगाया जाता है। इसके लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

१. पात्र के चेहरे को सुन्दर बनाने के लिए लगाये जाने वाले रंग की मात्रा समुचित रहे।
२. चेहरे पर कई प्रकार के प्रकाश डाले जाते हैं। ऐसी स्थिति में रंग में कहीं धब्बा या कालापन दिखलाई नहीं देना चाहिए।
३. रंग-योजना से चेहरा अधिक सुन्दर दिखलाई देना चाहिए।
४. वातावरण को ध्यान में रखकर रंग लगाया जावे।
५. किसी विशिष्ट प्रदर्शन हेतु रंगों का चयन बहुत ही सावधानी से हो।
६. पसीने आदि से रंग का फ़ैलाव न हो।
७. लगाया हुआ रंग त्वचा में जलन उत्पन्न न करदे। अतः रंग के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।
८. एक साथ विरोधी रंगों का प्रयोग न किया जावे।

आजकल बाजार में मेक-अप के लिए काफी अच्छी सामग्री आती है। उसका प्रयोग त्वचा के मूल रंग के अनुसार करना लाभप्रद होगा।

—※—

प्रदर्शन-योजना

नृत्य प्रस्तुत करने से पूर्व नृत्यकार को प्रदर्शन सम्बन्धी सभी वस्तुओं एवं वातावरण का निरीक्षण करके फिर मंच पर प्रवेश करना चाहिए। निरीक्षण करते समय निम्न बातों का ध्यान रखा जावे।—

रूप-सज्जा (मेक अप)

नृत्यकार का विशेष कार्य रूप-सज्जा का है। इसके लिए ऐसे रंग उपयोग किया जावे जिससे कि चेहरा गौर वर्ण का दिखलाई दे। इसके अतिरिक्त पात्र के अनुसार रूप-सज्जा के रंगो का प्रयोग किया जाता है, जिसका ध्यान रखना आवश्यक है। नर्तक को सर्व प्रथम यह ध्यान देना आवश्यक है कि वह किसकी भूमिका को नृत्य द्वारा प्रदर्शित करेगा।

प्रत्येक अंग-उपांग को बहुत ही सावधानी के साथ सजाना चाहिए। इसमें आंख, भौं, होठ, गाल, नाक आदि सभी अंगों की रेखाओं एवं उनकी रंग-योजना को सही प्रकार से कथानक के पात्रानुसार करना चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि कृष्ण की मुख्य-भूमिका के लिए मंच पर उपस्थित करना है तो कृष्ण की उस लीला से सम्बन्धित रूप-सज्जा की जावे, जो उक्त समय के कृष्ण की थी।

प्रत्येक घटना के साथ ही साज-शृंगार में परिवर्तन होता है। रूप-सज्जा का कार्य है नृत्यकार को पात्र के अनुकूल रूप में रंगमंच पर प्रस्तुत करना। इस क्रिया में कलाकार को राजा-रईस, देव-किन्नर-गंधर्व, धनी-गरीब, राक्षस, मजदूर वृद्ध जवान आदि की भूमिका के

रूप में प्रदर्शन करना होता है। रूप-सज्जा के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) नर्तक की त्वचा का रंग तथा उस पर चढ़ाया जाने वाला अन्य रंग।

(२) जिस पात्र की भूमिका को निभाना है, उसकी अवस्था तथा रंग-भूषा।

(३) आंखों की लम्बाई-चौड़ाई आदि।

(४) भौं की बनावट एवं उसके बाल।

(५) नाक का रंग, बनावट, फुलावट आदि।

(६) होंठों की बनावट, लम्बाई-चौड़ाई आदि।

(७) दांतों की बनावट।

(८) गालों का उभार, संकुचित रूप या अन्य रूप।

(९) ठोडी की लम्बाई-चौड़ाई।

(१०) दाढ़ी, मूंछ, जुल्फों का स्वरूप।

(११) माथे का उभार, चपटापन, गोलाई आदि।

प्रत्येक व्यक्ति का स्वरूप चेहरे के विभिन्न अंगों के अनुसार पृथक्-पृथक् होता है। कुशल कारीगर (मेक-अप-मीन) उसी रूप में उस कलाकार को सजाकर मंच पर प्रस्तुत करता है। उसे देखकर दर्शकगण रंग-सज्जा व्यवस्थापक की प्रशंसा करते हैं।

उपर्युक्त अंगों पर आवश्यकतानुसार लाल, पीला, नीला, काला केसरिया आदि रंगों को लगाया जाता है। इसके लिए कुछ अंगों का रंग निश्चित हैं, जैसे—आंखों में काजल, होठों पर लालिमा आदि।

वेशभूषा

प्रत्येक नृत्यकार को मंच पर प्रस्तुत होने से पूर्व अपने वस्त्रों का

भी निरीक्षण कर लेना चाहिए। वस्त्रों का निरीक्षण करते समय निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए :—

१. वस्त्रों का चयन कथावस्तु एवं वातावरण के अनुकूल हो।
२. वस्त्रों का रंग रंगमंच की दृष्टि से आकर्षक हो।
३. प्रत्येक अंगों पर धारण किया हुआ वस्त्र शरीर पर हर दृष्टि से उपयुक्त प्रतीत हो।
४ वस्त्रों की बनावट सम्बन्धित समाज के अनुकूल हो।
५. नृत्योपयोगी वस्त्र अधिक भारी तथा एक दम हल्के न हों।
६. वस्त्रों को इस प्रकार पहिना जावे, जिससे कि अंगों द्वारा प्रकाशित भाव स्पष्ट दिखलाई देते रहें।

आभूषण–सज्जा

नृत्य में स्त्री तथा पुरुष दोनों का ही कार्य होता है। स्त्री नृत्यकार के लिए भी वे ही बातें ध्यान रखने योग्य हैं जो पुरुष कलाकार के लिए हैं। परन्तु स्त्री–कलाकार की सजावट में आभूषणों का स्थान विशेष होता है। इसके लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

१. नृत्य के समय धारण किये जाने वाले आभूषण नकली सोने या चांदी के होने चाहिए।
२. सभी आभूषण चमकदार होने चाहिए।
३. आभूषणों का वजन अधिक भारी तथा अधिक हलका भी न हो।
४. आभूषणों को इस प्रकार पहिना जावे जो नृत्य करते समय वे खुल न जावें।
५. आभूषणों को देश, काल, वातावरण, वर्ग आदि के अनुसार धारण किया जावे।

रूप में प्रदर्शन करना होता है। रूप–सज्जा के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) नर्तक की त्वचा का रंग तथा उस पर चढ़ाया जाने वाला अन्य रंग।

(२) जिस पात्र की भूमिका को निभाना है, उसकी अवस्था तथा रंग-भूषा।

(३) आंखों की लम्बाई-चौड़ाई आदि।

(४) भौं की बनावट एवं उसके बाल।

(५) नाक का रंग, बनावट, फुलावट आदि।

(६) होठों की बनावट, लम्बाई-चौड़ाई आदि।

(७) दांतों की बनावट।

(८) गालों का उभार, संकुचित रूप या अन्य रूप।

(९) ठोडी की लम्बाई-चौड़ाई।

(१०) दाढ़ी, मूंछ, जुल्फों का स्वरूप।

(११) माथे का उभार, चपटापन, गोलाई आदि।

प्रत्येक व्यक्ति का स्वरूप चेहरे के विभिन्न अंगों के अनुसार पृथक्-पृथक् होता है। कुशल कारीगर (मेक-अप-मैन) उसी रूप में उस कलाकार को सजाकर मंच पर प्रस्तुत करता है। उसे देखकर दर्शकगण रंग-सज्जा व्यवस्थापक की प्रशंसा करते हैं।

उपर्युक्त अंगों पर आवश्यकतानुसार लाल, पीला, नीला, काला केसरिया आदि रंगों को लगाया जाता है। इसके लिए कुछ अंगों का रंग निश्चित है, जैसे—आंखों में काजल, होठों पर लालिमा आदि।

वेशभूषा

भी निरीक्षण कर लेना चाहिए। वस्त्रों का निरीक्षण करते समय निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए :—

१. वस्त्रों का चयन कथावस्तु एवं वातावरण के अनुकूल हो।
२. वस्त्रों का रंग रंगमंच की दृष्टि से आकर्षक हो।
३. प्रत्येक अंगों पर धारण किया हुआ वस्त्र शरीर पर इस दृष्टि से उपयुक्त प्रतीत हो।
४. वस्त्रों की बनावट सम्बन्धित समाज के अनुकूल हो।
५. नृत्योपयोगी वस्त्र अधिक भारी तथा एक दम हल्के न हों।
६. वस्त्रों को इस प्रकार पहिना जावे, जिससे कि अंगों द्वारा प्रकाशित भाव स्पष्ट दिखलाई देते रहें।

आभूषण-सज्जा

नृत्य में स्त्री तथा पुरुष दोनों का ही कार्य होता है। स्त्री नृत्यकार के लिए भी वे ही बातें ध्यान रखने योग्य हैं जो पुरुष कलाकार के लिए हैं। परन्तु स्त्री-कलाकार की सजावट में आभूषणों का स्थान विशेष होता है। इसके लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

१. नृत्य के समय धारण किये जाने वाले आभूषण नकली सोने या चांदी के होने चाहिए।
२. सभी आभूषण चमकदार होने चाहिए।
३. आभूषणों का वजन अधिक भारी तथा अधिक हलका भी न हो।
४. आभूषणों को इस प्रकार पहिना जावे जो नृत्य करते समय ही खुल न जावें।
५. आभूषणों को देश, काल, वातावरण, वर्ग आदि के अनुसार धारण किया जावे।

घुंघरूओं का निरीक्षण

१. घुंघरू भरत धातु के मध्य श्रेणी के तथा मधुर ध्वनि वाले हों।
२. घुंघरूओं की लड़ी में टूटे हुए घुंघरू न रहे।
३. घुंघरूओं को कलात्मक ढंग से रस्सी में पिरोया जावे।
४. घुंघरूओं को अधिक कस कर या ढिलाई के साथ भी न बांधा जावे
५. प्रत्येक पांव में बांधी जाने वाली लड़ी के घुंघरू मधुर ध्वनि उत्पन्न करने वाले हों।

मंच का फर्श

१. नृत्य करने के लिये मंच का फर्श साफ-सुथरा होना चाहिए।
२. फर्श में कहीं गढे या ऊबड़-खाबड़ स्थान न हो।
३. फर्श पर दरी, कालीन आदि बिलकुल न बिछाई जावे।
४. पद-संचालन में फर्श बाधक न हो इसके लिए उस पर थोड़ा पाउडर डाल दिया जावे तो अच्छा होगा।

पर्दों का निरीक्षण

नृत्य-प्रारम्भ के समय पर्दे को हटाना पड़ता है तथा समाप्ति पर उसे गिराया या बन्द किया जाता है। अतः पर्दों का संचालन निश्चित समय पर किया जाना चाहिये। इस सम्बन्ध में निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए :—

१. पर्दा संचालित करने वाले को समय का चार्ट बनाकर दिया जावे।
२. पर्दे को गिराने या पृथक् करने के लिए किसी प्रकार का संकेत कर दिया जावे, जैसे—घन्टी बजाकर या प्रकाश के द्वारा आदि।
३. पर्दे की गिरारी का कार्य सही रहे। इसके लिए उनमें तेल देकर उचित रूप से चालू कर दिया जावे।
४. पर्दे को बन्द करने तथा खोलने वाली रस्सियां टूटी हुई तथा गांठदार न हो।

संगतकारों का निरीक्षण

१. सभी संगीतज्ञों को अपने-अपने वाद्यों को स्वर में मिलाकर मंच-कार्य को सम्भालना चाहिए।
२. संगतकारों को निश्चित स्थान पर संगत हेतु बैठाना चाहिए ?
३. संगतकार वे ही व्यक्ति रखे जावे जिन्होने अभ्यास के समय "संगत" की हो।
४. संगतकार स्वर-ताल के पक्के होने चाहिए।
५. रंगमंच पर बजाने वाले संगतकारों को भी साधारण रूप से सजा देना चाहिए।
६. संगत वाले वाद्य-यन्त्रों का भी पूर्व से निरीक्षण किया जावे।
७. नर्तक के साथ उन्ही धुनों का प्रयोग किया जावे, जो अभ्यास के अवसर बजाई जाती रही हैं।
८. धुन की लय में भी वही क्रम रखा जावे, जिसका प्रयोग प्रतिदिन किया गया हो।

प्रकाश-व्यवस्था का निरीक्षण

१. सभी दीप उचित रूप से कार्य कर रहे हों।
२. रंगीन प्रकाश-व्यवस्था उपयुक्त हो।
३. विशेष भाव-भंगिमा के लिए प्रकाश-योजना की उचित व्यवस्था हो।
४. रूप-सज्जा तथा वस्त्राभूषण के रंगों के अनुसार प्रकाश-व्यवस्थापक को रंग-योजना समझा दी गई हो।
५. प्रकाश-व्यवस्थापक को भी प्रकाश-योजना सम्बन्धी एक चार्ट दे देना चाहिए।
६. समय पर विद्युत्-यंत्र कार्य न करे तो इसके लिए पहिले से ही विशेष प्रकाश का प्रबन्ध रखा जावे।

ध्वनि–प्रसारक–यन्त्र (माइक)

१. माइक का उपयोग निश्चित अवसरों पर ही किया जावे।
२. प्रत्येक ध्वनि, शब्द तथा संगीत का कार्य विधिपूर्वक एवं स्पष्ट सुनाई दे। अतः अच्छे माइक का ही प्रयोग किया जावे।
३. विना माईक भी अगर समस्त कार्य का आनन्द दर्शकगण ले सके तो माइक की व्यवस्था न की जावे।
४. घुंघरूओं की झन्कार स्पष्ट रूप से सुनाई पड़नी जरूरी है। अतः माइक की व्यवस्था में इस बात को भी न भूलाया जावे।
५. मंच के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर माइक की व्यवस्था अवश्य की जावे, जिससे कि ध्वनि–प्रसारण सुव्यवस्थित हो सके।

इस प्रकार नृत्य-प्रदर्शन को सफल बनाने के लिए सम्बन्धित सभी बातों को ध्यान में रख कर प्रदर्शन-कार्य करने वाला नृत्यकार हमेशा सफलता प्राप्त करता है। नृत्य-निर्देशक का कर्तव्य है कि वह प्रदर्शन से संबंधित समस्त व्यवस्थापकों एव संचालकों को लिखित रूप से तीन दिन पूर्व निर्देश दे देवे जिससे कि वे लोग अपने २ कार्य को जिम्मेवारी के साथ सफल बनाने में सक्रिय रहें। ध्यान रखना चाहिए कि प्रदर्शन की सफलता रंगमंच से संबंधित प्रत्येक व्यक्ति की कुशलता पर निर्भर है किसी भी व्यक्ति की जरासी लापरवाही के कारण प्रदर्शन असफल हो सकता है।

प्रायोगिक क्रिया

नृत्य के भावों को उचित ढंग से प्रदर्शन करने के लिए मन को एकाग्र करके साधना करनी पड़ती है। इस साधना के लिए साधक को किसी वस्तु के विषय में आंगिक, मानसिक तथा व्यावहारिक क्रियाओं का अभ्यास करना चाहिए। प्रारम्भ में किसी भी विषय का अभ्यास कठिन-पूर्ण होता है, परन्तु शनैः शनैः उस पर अधिकार प्राप्त हो जाता है। फिर तो भावों को प्रगट करने के लिए हृदय से प्रेरणा मिलने लगती है।

जीवन में मनुष्य अनेक कार्य रात-दिन स्वयं करता है किन्तु किसी व्यक्ति को कह दिया जावे कि अपने दैनिक जीवन का कोई भी कार्य वह रंगमंच पर करके दिखलावे तो वह उस क्रिया को सही रूप से प्रदर्शित कर सकेगा। परन्तु एक कुशल नर्तक या साधक अपने जीवन के किसी भी कार्य को अनुकरण द्वारा सफलता पूर्वक रंगमंच पर भी प्रदर्शित कर सकता है। यह अनुकरण की क्रिया ही व्यक्ति को भावाभिव्यक्ति करने में सफल बनाती है। अतः सर्वप्रथम विद्यार्थी को उसके जीवन सम्बन्धी घटनाओं का ही अभ्यास कराया जाए।

अभ्यास–१

१. नृत्य करते हुए मंच के मध्य में आकर रुक जाइए।
२. बिना पुस्तक के पुस्तक उठाइए।
३. पुस्तक खोल कर देखिए।
४. पुस्तक के पन्ने उलटिए।

५. द्वार की तरफ देखिए।

६. पुस्तक यथास्थान रखिए।

७. नृत्य करते हुए मंच से वाहर चले जाइए।

अभ्यास–२

१. नृत्य करते हुए मंच पर प्रवेश कीजिए।

२. बिना लेखनी के लेखनी उठाइए।

३. स्याही की दवात उठाइए।

४. दवात का ढक्कन खोलिए।

५. कलम में स्याही भरिए।

३. कलम और दवात रखिए।

७, नृत्य करते हुए चले जाइए।

हमारे जीवन में प्रतिदिन इसी प्रकार के अन्य भी अनेक कार्य होते हैं जिनका अभ्यास नृत्यकला की दृष्टि से कराया जावे। प्रत्येक नये शिक्षार्थी को ऐसे साधारण-अभ्यास के द्वारा भावों का ज्ञान कराना चाहिए। अध्यापक का कर्तव्य है कि वह विद्यार्थी की प्रत्येक गतिविधि का निरीक्षण करता रहे कि विद्यार्थी का मंच पर प्रवेश करने का तरीका, पुस्तक उठाने का तरीका, पन्ने उलटने तथा पुस्तक वापिस-रखने का तरीका नृत्यकला की दृष्टि से सही हो रहे हैं या नहीं। प्रत्येक कार्य अपने-अपने स्थान पर महत्वपूर्ण होता है। अतः ध्यान रखा जावे कि विद्यार्थी के किसी भी कार्य में शिथिलता तो नहीं आ रही है।

विद्यार्थी इन कार्यों को प्रतिदिन करता है किन्तु मंच पर मच पर नृत्यकला से संबन्धित करके इनका प्रदर्शन कराया-जाएगा तो उस क्रिया में बनावटीपन आ जाएगा। इसलिये जान–बूझ कर नृत्यकला की दृष्टि से इन कार्यों को करना है। इन्हें सही दकार से कर देना ही नृत्य-कौशल कहा जाता है।

अभ्यास–३ (आंगिक-क्रिया)

नृत्यकला की जिस क्रिया मे सच्चाई प्रकट की जा सके, वही चेष्टा सफल मानी जाती है। किसी भी प्रयोग मे कमी दिखलाई दे तो उसे बारम्बार अभ्यास द्वारा सफल बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। इससे विद्यार्थी की स्मृति का विकास होगा और उसकी स्थूल-चेतना जागृत होगी। इससे वह छोटे मोटे सभी प्रकार के भावो पर अपना अधिकार प्राप्त कर सकेगा। नर्तक को रगमच पर अनेक प्रकार के भावों का प्रदर्शन करना होता है, जिसमे सत्य-असत्य, छोटो-मोटो सभी प्रकार की क्रियाएं की जाती हैं। अत अभ्यास नितात आवश्यक है —

१. बिना कंघे के बाल बनाइए।
२. बिना साबुन के हाथ धोइए, कपड़ा धोइए।
३. बिना उस्तरे के हजामत बनाइए।
४. बिना तोलिये के शरीर पोछिए।
५. बिना शीशे के मु ह देखिए।
६. बिना ब्रश के दातुन कीजिए।
७. बिना कलम के लिखिए।

उपर्युक्त क्रियाओं को करने के लिए नाचते हुए मंच पर आइए तथा मंच के मध्य में दर्शकों के समुख इनको कीजिए। प्रत्येक कार्य करते समय पांवों से घुंघरू की झंकार लय-बद्ध होती रहे, अन्यथा समस्त क्रियाएं नृत्यकला की दृष्टि से असफल मानी जाएगी।

अभ्यास–४ (मानसिक-क्रिया)

मनुष्य के जीवन में कुछ ऐमी घटनाएं भी होती हैं, जिनका सबध मन से होता है। नृत्य-विषय के विद्यार्थी को इस प्रकार की मानसिक-क्रिया सम्बन्धी प्रश्न पूछने चाहिए, जिससे [illegible]

न्तरिक

विकसित हो सके। मन की स्थिति को प्रकट करने के लिए निम्न प्रकार से अभ्यास कराया जाए :—

१. शाला जाने में देर हो गई है। गुरूजी मुझे डांटेंगे ?
२. मेरे हाथ से यह टूट गया है। अब क्या होगा ?
३. मैं इस रास्ते से कैसे जाऊं।
४. आज सारे विद्यार्थी मुझे मारेंगे।
५. वे लोग मेरी राह कितनी देर से देख रहे हैं।

उपर्युक्त भावों को सही रूप से प्रकट करने के लिए वारम्बार ऐसे प्रश्नों को पूछा जावे और ध्यान रखा जावे कि विद्यार्थी उन्हीं के अनुरूप भाव प्रदर्शित कर रहा है या नहीं। मन से सम्बन्धित इन क्रियाओं का प्रभाव सीधा चेहरे पर आता है। यह कठिन अभ्यास है। अतः इसका अभ्यास प्रतिदिन करना आवश्यक है।